प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागञ्ज, प्रयाग।

मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग

निवेदन

कविवर सेनापति के काव्य का अध्ययन अभी बहुत कम हुआ है। उनके विषय में अभी खोज की आवश्यकता है। जो कुछ प्राप्त है उसकी भी उचित समीक्षा का अभाव है। प्रस्तुत संग्रह में उनके विषय में कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। पाठकों का यदि इससे कुछ हित हुआ तो हमारा उत्साह और भी बढ़ेगा। आशा है आगे चलकर 'सेनापति' पर कुछ और दे सकूँ।

कवित्तों के संकलन में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि सभी प्रकार के छन्द आ जायं और कला तथा भाव की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ भी हों। संग्रह में पं० उमाशंकर शुक्ल द्वारा संपादित 'कवित्त रत्नाकर' से भी सहायता ली गई है। इसके लिये मैं शुक्ल जी का आभारी हूँ।

गौतम निवास-प्रयाग
श्रावणी, सं० २००५ वि०

ओंकारनाथ मिश्र

भूमिका

कवि का परिचय

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन साहित्य की मूल प्रवृत्तियों को लेकर हुआ है। साहित्य की एक प्रवृत्ति को लेकर एक काल का निर्णय किया गया है। परन्तु साहित्य की जो प्रवृत्तियाँ एक बार चल पड़ती हैं वे एकाएक सूख नहीं जातीं, उनका स्रोत आगे भी चलता रहता है, चाहे सूक्ष्म ही क्यों न हो। साथ ही ऐसा भी देखा गया है कि एक विचारधारा के अन्तर्गत कुछ फुटकर स्वतंत्र विचार-समूह भी समय समय पर प्रकट हुए हैं। हिन्दी साहित्य में भी यही बात दिखलायी पड़ती है। आदि वीर-गाथा काल में यद्यपि वीर-रस प्रधान रचनाएँ हुई हैं, परन्तु समय समय पर भक्ति और शृंगार के ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। इसी प्रकार भक्ति और रीति काल में भी समय की गति के अतिरिक्त भी रचनायें हुई हैं। समय समय पर स्वतंत्र विचारक सदा से होते आये हैं और अपनी स्वतंत्र भावनाओं को कविता के रूप में प्रकट किया है। हिन्दी-साहित्य के भक्ति काल में निर्गुण और सगुण की जो धारायें चलीं उनमें सगुण की ही आगे चल कर प्रधानता हुई। तुलसी और सूर के साहित्य-क्षेत्र में ही सभी तत्कालीन साहित्यकार डुबकी लगाते रहे। परन्तु कुछ कवि ऐसे भी हुये हैं जिन्होंने, जैसा कि पहिले कहा गया है, अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का परिचय दिया, यद्यपि युग की छाप उन पर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

कविवर सेनापति ऐसे ही कवियों में से हैं। आचार्य पं० रामचंद्र जी शुक्ल ने इनकी गणना भक्ति काल के फुटकरिये कवियों में की है। भारतीय साहित्यकारों ने सदा से अपने वाह्य-स्वरूप को छिपाया है, उसका तनिक भी संकेत अपनी कृतियों में नहीं किया

है। उनके काव्य-ग्रन्थों में उनका आन्तरिक स्वरूप व्याप्त रहता है। इसी आधार पर कुछ अन्तर्साक्ष्य द्वारा ही उनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ कहा जा सकता है। सम्भवतः वे अपने बाह्यरूप की अपेक्षा हृदय के वास्तविक रूप का परिचय देना अधिक उपयुक्त समझते थे। इसीलिये अपने काव्य ग्रन्थों में अपना वैयक्तिक परिचय न देकर केवल हृदय ही को स्पष्ट किया है। आज हम सूर और तुलसी को जितना जानते हैं, वह केवल उनके साहित्य के आधार ही पर। परन्तु 'सेनापति' जी ने अपने वाह्य-वैयक्तिक स्वरूप का भी सूक्ष्म परिचय दिया है। अपने 'कवित्त-रत्नाकर' में उन्होंने अपने वंश और निवास-स्थान की ओर कुछ संकेत किया है।

'दीक्षित परसराम, दादौ है विदित नाम,
जिन कीने यज्ञ, जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकौं,
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महा जानमनि, विद्यादान हूँ मैं चिन्तामनि,
हीरामनि दीक्षित ते पाई पंडिताई है।
'सेनापति' सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

मंगलाचरण और प्रशस्ति के अनन्तर सेनापति जी ने उक्त छन्द को 'कवित्त रत्नाकर' की पहिली तरंग में लिखा है। इसके आधार पर यह स्पष्ट है कि इनके पिता का नाम गंगाधर और पितामह का

जन्म भी वहीं हुआ था। उपर्युक्त छन्द में 'जिन कीने यज्ञ'-पद ध्यान देने योग्य है। इस पद से इतना तो स्पष्ट ही है कि 'सेनापति' के पितामह यज्ञ-यागादि अनुष्ठान करने वाले धार्मिक व्यक्ति थे। इस धार्मिक-वंश परंपरा का प्रभाव सेनापति पर भी पड़ा है। ऐसे धार्मिक व्यक्ति का गंगा तट पर ही रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इनके पूर्वज कहीं से भी आये हों परन्तु परशुराम जी ने तो अपना स्थान अनूपशहर ही में बनाया। वहीं इनके पुत्र गंगाधर जी हुये होंगे और फिर सेनापति का जन्म भी वहीं हुआ होगा। यदि सेनापति, अनूपशहर में रहे हैं तो जन्मस्थान के नाते ही। अतः अनुमान यही होता है कि इनका जन्मस्थान अनूपशहर ही है।

कुछ विद्वानों ने 'गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है' पद का अर्थ यह लगाया है कि परशुराम जी को अनूप शहर दान में मिला था। परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं प्रतीत होता। 'बसति पाई है' का अर्थ यही है कि निवास-स्थान मिला। और फिर इसका कहीं भी प्रसंग नहीं बताया गया है कि यह दान इन्हें कहाँ से और किनके द्वारा मिला। यदि किसी ने उदारता पूर्वक सत्कार में दान दिया भी होता तो 'सेनापति' उसकी उदारता का कुछ परिचय तो अवश्य देते। 'पाइ कमलेच्छन के पाइक मलेच्छन को काहे कौं कहाइयै' कह कर जहाँ यवनों के आश्रय की बात का प्रकरण बताया है, वहाँ अपने पूर्वजों के उदार आश्रयदाता और दानी का कुछ परिचय तो अवश्य देते। कुछ भी हो, इनके पूर्वज अनूपशहर में रहते थे, यह तो निर्विवाद है।

सेनापति जिस समय हुये थे, उस समय उत्तरी भारत में मुगलों का शासन था। सम्भवतः जहाँगीर के शासनकाल में सेनापति हुये थे। ऐसे समय में दिल्ली के निकटवर्ती प्रान्तों पर केन्द्रीय शासन के अतिरिक्त शासन-व्यवस्था रही होगी, यह अनुमान ठीक नहीं जँचता। वहाँ का प्रबन्ध तो केन्द्रीय सरकार द्वारा ही होता रहा होगा। अनूपशहर दिल्ली से बहुत ही सन्निकट है। वहाँ की शासन व्यवस्था किसी

दूसरे के हाथ में न रही होगी। फिर कौन किसको क्या दान देगा? 'अनीराय सिंह-दल' को अनूपशहर का परगना जहाँगीर से पुरस्कार के रूप में मिला था, ऐसा इतिहास से प्रकट होता है। पुरस्कार में पाई हुई वस्तु को उनके वंशजों ने बाद में आपस में बाँटा, इस बँटे हुये भाग का दान किस प्रकार हुआ यह विचारणीय है।

इनकी जन्म-तिथि के विषय में भी कुछ नहीं ज्ञात है। ज्ञात इतना ही है कि सं० १७०६ वि० में इन्होंने 'कवित्त-रत्नाकर' की रचना की।

"संवत सत्रह सै छ मैं, सेइ सियापति पाइ।
'सेनापति' कविता सजी, सज्जन सजौ सहाइ॥"

'कवित्त-रत्नाकर' ऐसे प्रौढ़ ग्रन्थ का निर्माण अधिक वयस्क होने पर ही सेनापति जी ने की होगी यह तो स्पष्ट ही है। दूसरी और पाचवीं तरंग के छन्दों के भावों को देखकर ऐसा ही अनुमान होता है कि कवि को संसार का अनुभव प्राप्त था और सांसारिक सुखोपभोग की लिप्सा से मन ऊब गया था। यह उदासीनता प्रायः वृद्धावस्था में ही होती है।

"आधी ते सरस गई बीति कै बरस, अब,
दुज्जन दरस बीच न रस बढ़ाइये॥"

इस पंक्ति से तो स्पष्ट ही है कि इस छन्द के निर्माण के समय कवि प्रौढ़ावस्था को पार कर चुका था। यदि ६० वर्ष की अवस्था में भी इस ग्रंथ का निर्माण किया होगा तो इनका जन्म सं० १६४६ के आस पास ठहरता है।

"सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,

ही में मृत्यु पर्यंत ये रहे। वहीं पर सं० १७२५—३० के आस पास इनका देहावसान भी हुआ होगा, ऐसा अनुमान होता है।

रचना

सेनापति जी के दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। पहला 'काव्य-कल्पद्रुम' और दूसरा 'कवित्त-रत्नाकर'। 'काव्य-कल्पद्रुम' देखने में नहीं आया। 'कवित्त रत्नाकर' की तरह उसमें भी कवि ने रचना काल अवश्य दिया होगा। ग्रन्थ के नाम से ऐसा अनुमान होता है कि उस ग्रन्थ में कवि ने काव्य के अंगोपाङ्गों का वर्णन किया होगा। रीति काल की जैसी परिस्थिति के सन्निकट ये हुये थे उससे भी सिद्ध है कि रीति-परिपाटी से ये अलग न गये होंगे। स्वयं 'रत्नाकर' में भी रीति-परम्परा की झलक कहीं कहीं दिखाई पड़ती है। 'काव्य-कल्पद्रुम' का निर्माण कवि ने 'रत्नाकर' के पहिले किया होगा। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त और कोई रचना इनकी नहीं मिलती। परन्तु अनुमान तो यह किया जाता है कि जब कवि ने 'क्षेत्र-सन्यास' लिया था उस समय भक्ति विषयक और भी कुछ रचनायें की होंगी। सं० १७०६ तक भर में केवल दो ही ग्रन्थों का निर्माण किया हो, और नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। सेनापति जैसे प्रतिभा-सम्पन्न कवि के लिये, जिसने अपनी गर्वोक्तियों में अपनी कविता को ध्वनि, रस, गुण आदि से युक्त बताया है, यह स्वाभाविक हो सकता है कि और भी शृंगारिक अथवा अन्य काव्य-गुण पूर्ण रचनायें की हों। अभी तो हमारे सामने केवल 'कवित्त रत्नाकर' ही है जो उनकी कवित्व-प्रतिभा को उच्च बताने में पूर्ण समर्थ है। इसकी रचना यद्यपि कवि ने रीति परम्परा के अनुसार नहीं की है परन्तु उसकी छाप इस पर स्पष्ट है।

'कवित्त रत्नाकर' पाँच तरंगों में विभक्त है। पहली तरंग में कवि ने श्लेष का वर्णन किया है। इसी श्लेष वर्णन से ही पता चलता है कि कवि ने रीतिकालीन अलंकारवादी कवियों की श्रेणी में ही अपने को रक्खा है। यद्यपि सेनापति जी भक्तिकाल के अन्त में

हुये थे, परन्तु फिर भी उस समय से रीति ग्रन्थों के निर्माण की प्रथा चल पड़ी थी। दो युगों के मध्य में होने के कारण ही इनके ऊपर दोनों युगों की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। दूसरी तरंग में शृंगार-वर्णन है। इसमें भावों के चित्र अच्छे अंकित किये गये हैं। स्वतंत्र अलग अलग भावों को देखकर ही अनुमान होता है कि ये छन्द किसी रीति-ग्रन्थ के उदाहरण के रूप में ही लिखे गये हैं। तीसरी तरंग में ऋतु-वर्णन है और यह ऋतु-वर्णन सेनापति की अपनी चीज है। चौथी तरंग में रामायण-वर्णन है। कवि ने स्वयं कहा है कि राम कथा के किसी किसी प्रसंग को लेकर मुक्तक रूप में छन्दों की रचनाएँ की हैं—

'सेनापति' यातैं कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
कहूँ काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं।

पाँचवी तरंग में भक्ति सम्बन्धी कवित्तों का संग्रह है।

भाषा

'सेनापति' खड़ी बोली-प्रान्त के रहनेवाले थे। उनके काव्य से तो यह भी पता चलता है कि वे संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। उस समय काव्य की भाषायें दो ही चल रही थीं, एक अवधी और दूसरी ब्रज। सेनापति ने अपनी रचना शुद्ध ब्रजभाषा में की है। यद्यपि प्रादेशिकता के प्रभाव से कुछ खड़ी बोली के भी शब्द मिलते हैं, परन्तु ऐसे शब्द बहुत कम हैं। कहीं कहीं क्रियाओं के रूप और सर्वनाम के प्रयोग में खड़ी बोली की झलक दिखाई पड़ती है। समय

प्रायः श्लेष और यमक अलंकारों की अधिकता के कारण भाषा की स्वतंत्रता छिन जाती है और काव्य में क्लिष्टता भी आ जाती है, परन्तु सेनापति की भाषा ने श्लेष को साथ में लेते हुये भी 'प्रसाद' गुण को नहीं छोड़ा है। इनकी रचना में भाषा का सर्वत्र प्रवाह एक रूप से पाया जाता है। इनकी भाषा बहुत ही सुव्यवस्थित और परिमार्जित है। कवि ने वाच्यार्थ से ही भाषा में अधिक काम लिया है।

काव्य में अलंकार-विधान

काव्य में अलंकार का गौण स्थान है। अलंकार काव्य की आत्मा-रस का पोषक अवश्य है, परन्तु अनिवार्य अंग नहीं है। इसीलिये प्रतिभा सम्पन्न कवि अलंकार के पीछे नहीं पड़ते। सेनापति ने अपने काव्य में अलंकार की योजना जान बूझकर की है। आश्चर्य तो यह है कि इतना अलंकार विधान का प्रेमी कवि, कविता की स्वाभाविकता की रक्षा किस प्रकार कर सका है? यह सब कवि की प्रकृत-प्रतिभा पर आश्रित होता है। सेनापति ने अपनी प्रतिभा के बल से अपने काव्य में कला (अलंकार) और भाव (रस) दोनों का उचित समन्वय किया है। शब्दालंकारों के विधान में ही अधिक अस्वाभाविकता का डर रहता है। उसमें कवि का ध्यान कविता के वाह्य-रूप-विधान की ओर चला जाता है। सेनापति ने काव्य में श्लेष, यमक और चित्र इन्हीं तीन अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। पहली तरंग में श्लेष का वर्णन है, यह पहिले ही कहा जा चुका है। हिन्दी में कई कवियों ने श्लेष का वर्णन किया है। केशव इसके लिये प्रसिद्ध हैं। परन्तु सेनापति की भाँति स्वाभाविकता का संरक्षण कोई नहीं कर सका है। कारण यह है कि सेनापति ने श्लेष प्रकरण में भी साधारण से साधारण शब्दों का ही प्रयोग किया है। केवल सभंग और अभंग-क्रम से पढ़ने में ही विशेष चमत्कार है। इसके कारण अर्थ में दुरूहता नहीं आने पाई है। समस्त छन्दों को पढ़ जाइये क्लिष्टता का अनुभव

शायद ही दो एक स्थान पर हो। अप्रचलित शब्दों का प्रयोग तो सेनापति ने किया ही नहीं है। प्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण ही अन्य कवियों ने ये बाजी मार ले गये हैं। अर्थालंकारों का प्रयोग कवि ने विशेष कर शृंगार वर्णन और सीता-राम-सौन्दर्य वर्णन में किया है। जिस अलंकार को कवि ने एक छन्द में दिखाया है उसके स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है, मानो उसी अलंकार के उदाहरण के रूप में ही कवि ने छन्द को लिखा है। उत्प्रेक्षा, प्रतीप, रूपक, व्यतिरेक आदि अलंकारों के उदाहरण 'कवित्त रत्नाकर' में स्थल-स्थल पर मिलते हैं।

गया है। सम्भव है उसी भाव के चित्र को उपस्थित करना ही कवि का उद्देश्य रहा हो। परन्तु अधिकांश रूप में रस का पूर्ण परिपाक स्थल-स्थल पर देखा जाता है। शृंगार-वर्णन में कवि ने शृंगार के दोनों रूपों—संयोग और वियोग—को दिखाने की चेष्टा की है। दूसरी तरंग के प्रारम्भिक छन्दों में कवि ने नख शिख का वर्णन किया है। इसी नख-शिख वर्णन में संयोग शृंगार का समावेश है।

"अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन,
नैक न कमल उपमा कौ नियरात है।
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे, प्यारे,
ज्यौं-ज्यौं मैं निहारे त्यौं-त्यौं खरौ ललचात है॥
'सेनापति' सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौं निरखि हियौ हरषि सिरात है।
कान लौं बिसाल, काम भूप के रसाल, बाल,
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥"

'तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है' से प्रेम की कितनी गहरी व्यंजना होती है! इसे कोई सहृदय ही जान सकता है।

'विप्रलम्भ' शृँगार प्रेम की सच्ची कसौटी है। प्रेम की पराकाष्ठा वहीं देखी जाती है। इसका भी वर्णन कवि ने बहुत ही स्वाभाविक किया है। इस शृंगार वर्णन के प्रसंग में कवि ने कितने ही अनुभावों और संचारियों के चित्रों को भी शब्द रूप में अंकित किया है। एक ही छन्द में कई संचारियों का समावेश भी बड़ी सुन्दरता से किया है।

"नंद के कुमार, मार हू तैं सुकुमार, ठाढ़े
हुते निज द्वार, प्रीति रीति परवीन हैं।
निकसि हौं आई, देखि रही सकुचाई, 'सेना
पति' जदुराई मोहिं देखि हँसि दीन हैं॥
तब तैं है छीन छबि, देखिबे कौं दीन, सब
सुधि-बुधि हीन हम निपट अधीन हैं।

विरह मलीन, चैन पावत अली न, मन,
मेरौ हरि लीन तातैं सदा हरि लीन हैं ।।"

उक्त छन्द में वियोग की दशा में नायिका का चित्र अंकित किया गया है । साथ ही उसकी विभिन्न मानसिक दशाओं का वर्णन भी बड़ी मार्मिकता से किया गया है । 'देखि रही सकुचाई' में लज्जा, 'हँसिदीन' में हास, 'छीन छवि' में कृशता आदि भावों का वर्णन कितना सुन्दर और संक्षेप में हुआ है ?

आगे चल कर कवि ने नायिका के भेदों का भी रूप उपस्थित किया है । प्रोषित पतिका, खंडिता, रूप-गर्विता आदि नायिकाओं का चित्र भी कवि ने खींचा है । इन प्रसंगों में कवि ने शृंगार रस का पूर्ण परिपाक दिखाया है ।

शृंगार रस के अतिरिक्त रामायण-वर्णन में कवि ने 'वीर रस' का भी सफल वर्णन किया है । राम-रावण के युद्ध-वर्णन में प्रत्येक छन्द से वीर-रस टपका पड़ता है ।

"वीर-रस मदमाते, रन तैं न होत हाँ ते,
दुहू के निदान अभिमान चाप बान कौं ।
सर बरषत, गुन कौं न करषत मानौं,
हिय हरषत, जुद्ध करत बखान कौं ।।
'सेनापति' सिंह-सारदूल से लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातु धान कौं ।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरधर है,
उत दसकंधर है सागर गुमान कौं ।।"

छन्द को पढ़ते ही युद्ध-स्थल का चित्र आँखों के सामने आ जाता है । हस्तलाघव और युद्ध-तन्मयता का चित्र ६६ छन्द में देखिये ।

पाँचवीं तरंग में भक्ति का वर्णन करते हुये कवि ने शान्त रस को भी अच्छी तरह व्यक्त किया है । आश्चर्य तो यह है कि एक ही कवि

ने विभिन्न विरोधी रसों में किस सफलता के साथ रचना की है। इस रस-निरूपण में सेनापति की तुलना संस्कृत के कवि 'भवभूति' से की जा सकती है। जिस प्रकार भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' 'मालती माधव' और 'महावीर चरित' में क्रमशः करुण, शृंगार और वीर-रस का पूर्ण परिपाक दिखाया है उसी प्रकार सेनापति ने भी एक ही ग्रन्थ में शृंगार, वीर और शान्त रसों को पूर्ण सफलता के साथ दिखाया है। रौद्र और भयानक रस का भी वर्णन दो एक जगह कवि ने बहुत सुन्दर किया है।

ऋतु-वर्णन

हिन्दी-साहित्य में कवियों ने ऋतु-वर्णन जहाँ कहीं किया है, केवल उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत। तुलसीदास जी के वर्षा और शरद् वर्णन में आध्यात्मिकता की प्रधानता हो गई है। उनका उद्देश्य प्राकृतिक दृश्य का चित्र उपस्थित करना नहीं, किन्तु उसके सहारे उपदेश देना मात्र प्रतीत होता है। सूरदास जी ने भी जहाँ कहीं मधुवन, निकुंज, यमुना-तट आदि का वर्णन किया है, वहाँ उसके रूप-विधान में उनका मन न रम-कर शृंगार के उद्दीपन के रूप में ही लग गया है। 'बिनु गोपाल बैरिनि भई कुंजैं, 'मधुबन तुम कत रहत हरे' को पढ़ कर कुंजों और मधुबन की हरियाली की ओर ध्यान न जाकर विरह की दशाओं की ओर मन खिंच जाता है। परन्तु सेनापति ने जो ऋतु-वर्णन किया है वह केवल वर्णन मात्र के लिये है। शृंगार-रस के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत उसका वर्णन नहीं किया गया है। प्रत्येक ऋतुओं का स्वाभाविक-चित्र जिस प्रकार सेनापति ने अंकित किया है वैसा हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ऋतु-वर्णन की स्वाभाविकता इसी में है कि उसका सामञ्जस्य मानव-जीवन के साथ हो जाय। प्रत्येक ऋतु में मानव एवं प्राणि-वर्ग मात्र उनसे किस प्रकार प्रभावित होता है, इसी का स्वरूप सामने रखना, प्रकृति और चेतन-जगत का सामञ्जस्य उपस्थित करना

है। ऋतुराज वसंत के पुष्पों के विकास के साथ-साथ चेतन-जगत भी किस प्रकार विकसित हो उठता है और वह वसंत की प्राकृतिक छटा का किस प्रकार अनुभव करता है, इसी को सामने शब्द चित्र द्वारा रखना वसंत का वर्णन होगा। पढ़ और अपढ़, जड़ और चेतन सभी उससे प्रभावित हों। ऐसा नहीं कि प्रियतमा का वियोगी अथवा संयोगी ही उसका अनुभव कर सके और सहृदय पाठक ही केवल काव्य मात्र में उसके कल्पनामय स्वरुप को ही देख सकें। यहाँ तो वसंत की अवाई में कोकिल-वंदी हो, मधुप विरुदावली का गान करने वाले हों और रंगविरंगे पुष्प ही चतुरंगिनी सेना के रूप में हों, तभी उसका स्वाभाविक वर्णन है। सेनापति की यही विशेषता है कि उनके वसंत वर्णन में हम विरहिणी की कराहभरी आवाज़ नहीं सुनते, किन्तु 'आस पास पुहुपन की सुबास' ही का आनन्द लेते हैं।

ग्रीष्म ऋतु का एक चित्र देखिये—

"वृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
नचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौ पकरि पंथी-पंछी बिरमत है॥
'सेनापति' नैकु दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं,
घरी एक बैठि कहूँ घामैं वितवत है॥"

गर्मी के मारे परेशान होकर यात्री थोड़ी देर के लिए पेड़ की छाया में विश्राम कर रहा है। चारों ओर ज्वाल की लपक दिखाई पड़ती है। पत्ता तक नहीं खटकता। जेठ की दुपहरिया कितनी भयावह होती है? कितना स्वाभाविक वर्णन है! इसका अनुभव साधारण से साधारण कृषक भी भलीभाँति करता है। उसी को सेनापति जी

ने शब्दों द्वारा प्रत्यक्ष कर दिया है। पढ़ते ही ऐसा प्रतीत होता है, मानो कड़ाके की धूप में बैठे हों।

इसी प्रकार वर्षा और शरद के वर्णन में भी कवि ने कमाल किया है।

'घुमरि घुमरि घनघोर घहरात हैं' में जिस प्रकार बादल का गर्जना सुनाई पड़ता है उसी प्रकार 'कार्तिक की राति थोरी थोरी सियराति' में कार्तिक के गुलाबी जाड़े का अनुभव भी होने लगता है। शीत काल में सूर्य किस प्रकार तेजहीन हो जाते हैं इसका स्वरूप 'चित्र कैसौ लिख्यौ, तेजहीन दिनकर भयौ' में देखा जा सकता है। शिशिर ऋतु में दिन छोटा होता है और रात्रि बड़ी होती है। दिन किधर से चला गया, इसका पता ही नहीं लगता! उसका वर्णन देखिये—

"अब आयौ माह, प्यारे लागत हैं नाह, रवि
करत न दाह जैसौ अवरेखियत है।
जानियै न जात, बात कहत बिलात दिन,
छिन सौं न तातै तन कौ बिसेखियत है॥
कलप सी राति सो तौ सोए न सिराति क्यौं हूँ,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है।
'सेनापति' मेरे जान दिन हूँ तै रात भई,
दिन मेरे जान सपने मैं देखियत है॥"

सभी लोग जाड़े में इसका अनुभव करते हैं। उसी को कवि ने साधारण शब्दों में पद्यबद्ध कर दिया है, परन्तु पद्य में कितनी सजीवता है!

ऋतु-वर्णन के इन छन्दों को उद्दीपन के रूप में भी लिया जा सकता है। किसी किसी छन्द में कवि ने स्पष्ट व्यक्त भी कर दिया है। परन्तु हिन्दी के अन्य कवियों की भाँति सेनापति का मन प्रकृति के क्षेत्र से एक दम नहीं उठ गया है। प्रकृति के साथ इनका पर्याप्त अनुराग दिखाई पड़ता है। इसी अनुराग का ही परिणाम है कि कवित्तों में तन्मयता की मात्रा अधिक है। प्रकृति के अनेक रूपों का सेनापति

ने गम्भीरता से निरीक्षण किया था। केवल वर्णन के आधार पर बारह मासे के रूप में ही उसे नहीं देखा है।

प्रायः प्राकृतिक दृश्यों के स्वरूप-विधान में भी सामाजिक परिस्थिति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। रीति काल के सभी कवियों के प्राकृतिक (ऋतु) वर्णन में तत्कालीन राजसी ठाठ बाट का रूप देखा जाता है। राजाओं के आश्रय में रहने के कारण ऐसा हो जाना स्वाभाविक ही है। सेनापति के ऋतु वर्णन में भी तत्कालीन राजसी वैभव के चित्र देखे जाते हैं। गर्मी के समय में तपन से बचने के लिये राजमहलों में किस प्रकार शीतोपचार होता है, उसका वर्णन कवि ने कितना स्वाभाविक किया है—

"जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति विविध जल जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत हैं॥
"सेनापति' अतर गुलाब अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइवे कौं सीरे सब,
राज-भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं॥"

जाड़े के समय में 'प्रभु' लोगों के विश्राम का साधन देखिये—

"प्रात उठि आइवे कौं, तेलहि लगाइवे कौं,
मलि मलि न्हाइवे कौं, गरम हमाम है।
ओढ़िवे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
बैठिवे कौं सभा, जहाँ सूरज कौ घाम है॥
धूप कौं अगर 'सेनापति' सौंधौ सौरभ कौं,
सुख करिवे कौं छिति अन्तर कौ धाम है।
आए अगहन हिम पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है॥"

राज महलों का ही नहीं, कवि ने साधारण मानव समाज का भी वर्णन बहुत स्वाभाविकता के साथ किया है। जाड़े के समय में गरीब लोग गाँवों में श्रोलाव के चारों श्रोर बैठकर किस प्रकार आग तापते हैं, इसका भी चित्र 'सेनापति' ने खींचा है। कहने का तात्पर्य यह कि सेनापति ने ऋतु वर्णन में प्रकृति के साथ-साथ मानव एवं प्राणिवर्ग के जीवन को भी लिया है और उसका स्वाभाविक चित्र भी अंकित किया है।

भक्ति

उपासना क्षेत्र में हिन्दी-साहित्य के भक्त कवियों ने बहुत योग दिया है। उनका साहित्य भक्ति-प्रधान ही विशेष है। यद्यपि निर्गुण धारा को लेकर भी साहित्य निर्मित हुआ है, परन्तु प्रधानता सगुण की ही रही। सगुण धारा में कोई राम-पक्ष को लेकर चला, कोई कृष्ण पक्ष को। बड़े बड़े कवियों के काव्यों को देख कर हम अपनी यह धारणा भले ही बना लें कि अमुक राम के भक्त थे और अमुक कृष्ण के; परन्तु वास्तव में वैयक्तिक रूप से वे बहुत ही उदार थे। उनके सामने राम और कृष्ण समान थे। यह बात दूसरी है कि एक रूप-विशेष को उन लोगों ने अपना आश्रय-विशेष माना। तुलसी ने जहाँ राम की अनन्यता दिखाई है वहाँ कृष्ण गीतावली में कृष्ण का भी गुण गान किया है। 'मानस' में "शिव द्रोही मम दास कहावै, सो नर मोहिं सपनेहुँ नहिं भावै।" कहकर अपनी वैष्णवता की उदारता दिखलाई है। इसी प्रकार हर एक व्यक्ति उपासना क्षेत्र में अपना व्यक्तिगत अस्तित्व रखते हुये भी सार्वजनीन उदारता (विश्व-बन्धुत्व भाव) को अलग नहीं रखता।

'सेनापति' भी उपासना-क्षेत्र में राम-भक्त कवियों में आते हैं। यों तो क्षेत्र-संन्यास लेकर इन्होंने ब्रज में निवास किया था, परन्तु कृष्ण-भक्ति-विषयक इनकी रचनायें बहुत कम मिलती हैं, बल्कि नहीं के बरा-

बर हैं। राधा और कृष्ण विषयक जो रचनायें मिलती भी हैं वे रीति-कालीन कवियों की भाँति शृंगार के रूप में ही। भक्ति-भावना को लेकर लिखी हुई रचनायें इनकी राम और गंगा विषयक ही अधिक हैं। 'कवित्त-रत्नाकर' की चौथी और पाँचवी तरंग में ऐसे छन्दों का संग्रह किया गया है। 'कवित्त-रत्नाकर' को पढ़ने के पश्चात् तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि में भक्ति-भावना का उदय प्रौढ़ावस्था के बाद में हुआ है। पहिले सेनापति जी किसी राजा के आश्रय में थे और शृंगारिक रचनायें ही विशेष किया करते थे। किसी मुसलमान राजा के आश्रय में भी ये कुछ दिन तक अवश्य रहे हैं, ऐसा कुछ छन्दों से पता चलता है। मुसलमानी राजदरबार का वर्णन कवि ने कहीं कहीं बहुत अच्छा किया है। शृंगार वर्णन में कहीं कहीं उपमायें कवि ने ऐसी दी हैं जिनमें मुसलमान वेश-भूषा और रहन सहन की पूरी छाप स्पष्ट है। एक छन्द है जिसमें कवि ने नायिका की उपमा 'समादान' से देकर श्लेष युक्त वर्णन किया है।

"पूरी निधि नेह की उज्यारी दिपै देह की सु,
प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है ॥"

यह 'शमादान' मुग़ल-दरबार का तुहफ़ा है। परन्तु इस मुसलमानी दरबार से कवि की उपेक्षा भी हो गई थी। इसकी ओर कवि ने स्वयं संकेत किया है।

"चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइयै ॥"

यहीं से कवि में मुसलमानों की दासता से उपेक्षा आने लगी और अन्त में सांसारिक ऐश्वर्य से उदासीन होकर उपासना की ओर झुके। मंगलाचरण के रूप में कवि ने अपने अभीष्ट देव राम की ही प्रार्थना की है। 'कवित्त-रत्नाकर' की पाँच तरंगों में से दो तरंगों में राम गुण-गान ही किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि सेनापति राम-भक्त

थे। राम के लोक-रक्षक और लोकोपकारी रूप का ही वर्णन सेनापति ने किया है। राज्य में सुव्यवस्था की स्थापना के लिये जिस प्रकार अच्छे राजा की आवश्यकता होती है उसी प्रकार लोक में मर्यादा की सुव्यवस्था के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राजारामचन्द्र जी की ही आवश्यकता है। इसीलिये सेनापति ने राजाराम का ही वर्णन किया है। भक्त-रूप सेनापति ने अशरण्य होकर ब्रह्मरूप-श्रीराम की ही शरण की आकांक्षा की है।

"पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राहतैं उबार्यौ जिन,
जाकौ नाभि-कमल, बिधाता हू कौ भौन है।
ध्यावैं सनकादि, जाहि गावैं वेद-बंदी, सदा,
सेवा कै रिझावैं सेस, रबि, ससि-पौन है॥
ऐसे रघुबीर कौं, अधीर ह्वै सुनावौ पीर,
बंधु-भीर आगे 'सेनापति' भली भौन है।
साँवरे-बरन, ताही सारँग-धरन बिन,
दूजौ दुख-हरन हमारौ और कौन है॥"

और भी—

"मानौं कै न मानौं, करौ सोई जोई जिय जानौं,
हम तौ पुकार एक तोही सौं करत हैं॥"

इन छन्दों के भावों को देखते हुये यही स्पष्ट होता है कि दीनता, मान मर्षता, अशरण्य गति आदि दिखला कर सेनापति ने सेव्य-सेवक भाव की भक्ति को ही व्यक्त किया है। सेवक अपने आराध्य देव के सामने अपने को तुच्छ बतलाता है और स्वामी की महत्ता को ही स्वीकार करता है। भक्त भगवान के भरोसे काल को भी कुछ नहीं गिनता। तभी तो सेनापति कलिकाल को भी फटकार बताते हैं—

"एरे कलिकाल! मोहि कालौ न निदरि सकै,
तू तौ मति मूढ़ अति कायर गँवार को।

'सेनापति निरधार, पाइपोस बरदार,
हौं तो राजा रामचन्द जू के दरबार को ॥ "

राम के भरोसे भक्त किसी को कुछ गिनता ही नहीं। उसको परवाह ही किसकी—

"जाके सिर पर आज राजत है महाराज,
ताहि कहौ परी परवाह कौन बात की ॥ "

भगवान की शरण में जाकर भक्त प्रार्थना करता है कि हमारे पाप कर्मों की ओर दृष्टिपात न करके आप हमारा उद्धार कर दीजिये। साथ ही उसमें गर्व भी जाग उठता है और स्वामी से ढिठाई करके कह बैठता है कि—

"आपने करम करि हौं ही निबहौंगो, तौब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ? ॥ "

'राम रसायन वर्णन' में जितने भी छन्द हैं सभी सेनापति के हृदय के उद्‌गार हैं। सांसारिक अनुभूति की उद्विग्नता के कारण ही ये भाव उठे हैं, इसीलिये इनके वर्णन में हृदय की तल्लीनता पाई जाती है।

आगे चल कर कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ गंगा जी की स्तुति की है। गंगा के प्रति ऐसी प्रगाढ़ भक्ति का कारण गंगातट वास ही है। अनूपशहर गंगा के रमणीक तट पर बसा है। गंगा की छटा वहाँ दर्शनीय है। एक तो कवि-हृदय, दूसरे भक्त-हृदय, तीसरे ब्रह्म-द्रव का सन्निधान! उत्तरोत्तर तन्मयता उत्पन्न करने के प्रधान साधन हैं। इसीलिये सेनापति जी ने गंगा की महिमा का वर्णन भी उसी तन्मयता से किया है जिस तन्मयता से राम-गुण गान किया है। गंगा को भी कवि ने राम के सम्बन्ध से ही श्रेष्ठ माना है। गंगा की उपासना वह इसलिये करता है कि उनकी सहायता से राम की भक्ति मिलेगी।

"राम-पद-संगिनी, तरंगिनी है गंगा, तातैं
याहि पकरे तैं पाइ रामके पकरिये ॥"

कवि ने गंगा को सभी तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ कहा है—

"राम जू की आन कोई तीरथ न आन देख्यौ,
गंगा की समान होतौ वेद तौ बतावतौ।
सम सरिता की, जौब होती सरि ताकी, तौ पै
याही कौं कन्हैया क्यौं विभूति मैं गनावतौ ॥
सगर कुमारन कौं, 'सेनापति' तारन कौं,
तीरथ जौ कोऊ सुरसरि सम पावतौ।
गंगा ही के अरथ भगीरथ बिरथ है, तौ
काहे कौं बिरथ तप करि तन तावतौ ॥"

गंगा की अपार महिमा और शक्ति का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"बिस्व की जुगति, जीतै जोग की जुगति हू कौ,
भुगति-मुकति देत लावति न पल है।
जाकौं पौन लागैं, दल-दुरित के भागैं, जाके
आगे न चलत जमराज हू कौं बल है ॥
'सेनापति' प्रीति-रीति, कीजै परतीति करि,
गंगा जप-तप नेम-धरम कौं फल है।
रूप न बरन, उतपति न, मरन, जाके
कर न चरन ताके चरन कौं जल है ॥"

कवि ने शंकर जी का भी वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ किया है। इन सभी देवी देवाताओं के वर्णन की तन्मयता से यह सिद्ध होता है कि सेनापति एक ही ब्रह्म को अनेक रूप में फैला हुआ विश्व में देखते थे। उनके लिये कृष्ण, राम, शंकर तथा गंगा सब एक ही हैं।

अनेक रूपों में उन्होंने अपने उपास्य देव ही की प्रार्थना की है। सभी के वर्णन में उनकी स्वानुभूति और हृदय की तल्लीनता दिखाई पड़ती है। भगवान में उनकी सच्ची लगन थी और इसी लगन के कारण ही वे संसार को तीर-तोरन सदृश छोड़ चुके थे।"

—ओंकारनाथ मिश्र

कवित्त-सरसी

वन्दना

छप्पय

(१)

परम जोति जाकी अनन्त, रमि रही निरंतर।
आदि, मध्य अरु अंत, गगन, दस-दिसि, बहिरंतर॥
गुन पुरान-इतिहास, वेद-वंदी जन गावत,।
धरत ध्यान अविराम, पार ब्रह्मादि न पावत॥
'सेनापति' आनन्द-घन, रिद्धि सिद्धि-मंगल-करन।
नाइक अनेक ब्रह्मण्ड कौ, एक राम संतत-सरन॥

कवित्त

(२)

पाइ जो कठिन जल-थल जप तप करि
विद्या उर धरि, परि हरि रस रोसौ है।
ताही कविताई कौं सुजस पसु चाहत है,
'सेनापति' जानत जो अच्छर नओ सौ है।
पाइ कै परस जाकौं सिलाहू सचेत भई,
पायो बोध-सार सारदाहू कौ, धरो सौ है।
और न भरोसौ, जिय परत खरो सौ, ताही,
राम पद पंकज कौ पूरन भरोसौ है॥

(३)

दीछित परसराम, दादौ है विदित नाम,
जिन कीने जज्ञ, जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकौं,
गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महाजानि मनि, विद्यादान हू कौ चिंतामनि,
हीरामनि दीच्छित तैं पाई पंडिताई है।
'सेनापति' सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

(४)

मूढ़न कौं अगम, सुगम एक ताकौं, जाकी,
तीछन अमल विधि बुद्धि है अथाह की।
कोई है अभंग, कोई पद है सभंग, सोधि,
देखें सब अंग सम सुधा के प्रवाह की॥
ज्ञान के निधान, छंद-कोप सावधान जाकी,
रसिक सुजान सब करत हैं गाहक की।
सेवक सियापति कौं, 'सेनापति' कवि सोई,
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की॥

(५)

दोष सौं मलीन, गुन हीन कविता है, तौ पै,
कीने अरबीन परबीन कोई सुनि है।
बिन ही सिखाये, सब सीखि हैं सुमति जो पै,
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है॥
दूपन कौं करि कैं, कवित्त बिन भूपन कौं,
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर-मुनि है।
रामैं अरचत 'सेनापति' चरचत दोऊ,
कवित रचत यातैं पद चुनि चुनि है॥

(६)

राखति न दोपै पोपै पिंगल के लच्छन कौ,
बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है।
जोए पद मन कौं हरष उपजावति है,
तजै को कनरसै, जो छन्द सरसति है॥
अच्छर हैं बिशद करति उपै आप सम,
जातें जगत की जड़ताऊ बिनसति है।
मानौं छबि ताकी उद्वत सविता की 'सेना—
पति' कवि ताको कबिताई बिलसति है॥

(७)

बानी सौं सहित सुबरन मुँह रहैं जहाँ,
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
संख्या करि लीजै अलंकार है अधिक यामैं,
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं॥
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरनन की,
तातैं 'सेनापति' कहैं तजि करि ब्याज कौं।
लीजियो बचाइ ज्यौं चुरावै नाहिं कोई सौंपी,
बित्त की सी थाती मैं कबित्तन की राजि कौं॥

(८)

ब्यापी देश देश बिशद कीरति उज्यारी जाकी,
सीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
सुर नर मुनि जाके दरस कौं तरसत,
राखत न खर तेजै, कला की निकाई है॥
करन के जोर जीति लेत हैं निसा कलंकै;
सेवक हैं तारे, ताकी गनती न पाई है।
राजा रामचन्द अरु पून्यौं कौं उदित चंद,
'सेनापति' बरनी दुहू की समताई है॥

चाहत सकल जाहि, रति कै भ्रमर है जो,
पुंजवति हौंस, उरवसी को विसाल है।
भली विधि कीनी, रस भरी नव जोबनी है,
'सेनापति' प्यारे वनमाली की रसाल है॥
धरत सुवास, पूरे गुन कौ निवास अव,
फूली सव अंग ऐसी कौन कलिकाल है।
ज्यौं न कुम्हिलाइ कंठ लाइ उर लाइ लीजै,
लाई नव वाल लाल मानौं फूल माल है॥

(१०)

प्रीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन,
मेरो तन जातरूप तातैं निदरत हौ।
'सेनापति' पाइ परैं, विनती करैं हूँ तुम्हैं,
देति न अधर नीजे तहाँ कौ ढरत हौ॥
वाट मैं मिलाइ तारे तोल्यौ वहु विधि प्यारे
दीनौ है सजीव आप तापर अरत हौ।
पाछे डारि अधमन हम दीनौं दूनौ मन,
तुम्हैं तुम नाथ इत पाउ न धरत हौ॥

(११)

विरह हुतासन धरत उर ताके रहै,
वाल मही पर परी भूखन गहति है।
सेवती कुसुम हू तैं कोमल सकल अंग,
सून सेज रत काम केलि कौं करति है॥
प्रानपति हैन गेह अंग न सुधारै जाके,
धरी है वरस तन में न सरसति है।
देखौ चतुराई 'सेनापति' कविताई की जु,
जोगिनी की सरिकौं वियोगिनी लहति है॥

(१२)

अरुन अधर सोहै सकल बदन चंद,
मंगल दरस बुध बुद्धि के बिसाल है।
'सेनापति' जासौं जुव जन सब जीवक हैं,
कवि अतिमंद गति चलत रसाल है॥
तम है चिकुर केतु काम की विजय निधि,
जगत जगमगत जाके जोति जाल है।
अंबर लसति भुगवति सुख रासिन कौं,
मेरे जान बाल नव ग्रहन की माल है॥

(१३)

केसौ अति बड़े जहाँ अरजुन पति काज,
अति गति भली बिधि बाजी की सुधारी है।
मनी सौ करन बीर संग दुरजोधन के,
संतनु तनै निहारि सुरत्यौ बिसारी है॥
सोहत सदा नकुल कौ है सील 'सेनापति',
देखियै सु भीमसेन अंग द्युति भारी है।
जाके कहैं आदि सभा परबस परति सो,
भारत की अनी किधौं बनी बर नारी है॥

(१४)

सदा नंदी जाकौं आसा कर हैं विराजमान,
नीकौं घनसार हूँ तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा द्युति जाके सेखर है,
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं॥
जो हैं सब भूतन कौं अंतर निवासी रमै,
धरे उर भोगी भेष धरत नगन कौं।
जानि बिन कहैं जानि 'सेनापति' कहैं मानि,
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं॥

(१५)

नाहीं नाहीं करैं थोरी मागैं सब दैन कहैं,
मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी होति,
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत विलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरैं दान पाठ परिवार हैं।
'सेनापति' वचन की रचना बिचारौ जामैं,
दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं॥

(१६)

थोरी कछू माँगेहोत राखत न प्रान लगि,
रूखे मन मौन ह्वे रहत रिसि भरि हैं।
आपने वसन देत जोरिवे की रति लेन,
वितरत जात धन धरा हा मैं धरि हैं॥
जाँचत ही जाचक सौं प्रगट कहत तुम,
चिन्ता मति करौ हम सो असान करिहैं॥
बानी द्वै अरथ 'सेनापति' की विचारि देखौ,
दाता अरु सूम दोऊ कीने सरवरि हैं॥

(१७)

गीतहिं सुनावैं तिलकन झलकावैं भुज,
मूलन छपावैं द्वारका हू के पयान ही।
वैभव सेव, भगतन की कमाई खाहिं,
सेवैं हरि माहिं पै न साँच है निदान ही॥
देवन के निवास नीची भवन की नारि होनि,
मोहिं कै विरच कै मन धन ध्यान ही।
'सेनापति' सुमति विचारि देखौ भली भाँति,
कलि के गुसाईं मानौ मागना समान ही॥

(१८)

पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार,
जहाँ मरि पापी होत सुरपुर पति है।
देखत ही जाकौं भलो घाट पहिचानियत,
एक रूप बानी जाके पानी की रहति है॥
बड़ी रज राखै जाकौं महा धीर तरसत,
'सेनापति' ठौर ठौर नीकीयै बहति है।
पाप पतवारि के कतल करिबे कौं गंगा,
पुन्य की असील तरवारि सी लसति है॥

(१९)

रजनी के समै बिन सरकि न सोयौ जात,
प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है।
रंगति सुवास राखैं भूपति रुचिर साल,
सूरज की तपति किरनि तन ताई है॥
सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात पर,
आँगन ही कल ज्यों त्यों अगिनि बराई है।
ग्रीपम की रितु हिम रितु दोऊ 'सेनापति'
लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई है॥

(२०)

तीर तैं अधिक बारिधार निरधार महा,
दारुन मकर चैन होत है नदीन कौं।
होति है करक अति बड़ी न सिराति राति,
तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कौं॥
सीरक अधिक चारि ओर अवनी रहै न,
पाँडरोन बिना क्यौं हूँ बनत धनीन कौं।
'सेनापति' बरनी है बरषा सिसिर रितु,
मूढ़न कौं अगम सुगम परवीन कौं॥

(२१)

देखैं छिति अंबर जलै है चारि ओर छोर,
तिनि तरवर सब ही कौं रूप हर्‌यौ है।
महा झर लागै जोति भादव की होति चलै,
जलद पवन तन सेक मानौं पर्‌यौ है॥
दारुन तरनि तरैं नदी सुख पावैं सब,
सीरी घन छाँह चाहिबौई चित्त धर्‌यो है।
देखौ चतुराई 'सेनापति' कविताई की जु,
ग्रीषम विषम बरषा की समकर्‌यौ है॥

(२२)

द्विजन की जामैं मरजाद छूटि जात भेष,
पहिले बरन कौं न तनकौ निदान है।
अंग छांव लीन स्मृति धुनि सुनिये न मुख,
लागी अब लार है न नाक हूँ कौ ज्ञान है॥
देखिये जवन शोभा घनी जुगलीन माँझ,
नाम हूँ सौं नातौ कृष्ण केसौ कौ जहान है,
'सेनापति' जामैं जग आसा सौं हा भटकत,
याही तैं बुढ़ापौ, कलिकाल के समान है॥

(२३)

कुस लव रस, करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाय कीनौ यहै भव तारन कौं,
बिपद हरन जाकी सुधा सम बानी है॥
सुबरनि रूप देह धारी पुत्र सील हरि,
आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि 'सेनापति' जानौ,
राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है॥

(२४)

बानरन राखै तोरि-डारत है अरि लंकै,
जाके वीर लछन विराजत निदान है।
अंगन कौं राखै बाहु दूरि करैं दूषन कौं,
हरि सभा राजै राज तेज कौ निधान है॥
आनँद मगन द्रग देखि जाहि सियरानी,
"सेनापति" जाके हेम नगर कौ दान है।
महाबली वीर वसुदेव कौं कुवँर कान्ह,
सो तौ मेरे जान राजा राम के समान है॥

(२५)

तब की तिहारी हँसि हिलनि मिलनि वह,
देखि जिय जानी हरि बस करि पाए हौ।
'सेनापति' अधिक अयानी मैं न जानी तुम,
जेंवत ही वाके अँचवत ही पराये हौ॥
बीतें औधि आरति त्रियान कौं बिसारत हौ,
धारत न पाउँ बेग कहाँ कित छाये हौ।
पहिले तौ मन मोहौ, पीछे कर तन मोहौ,
प्यारे तुम साँचें मन मोहन कहाये हौ॥

(२६)

पूरत हैं कामैं सत्यभामा सुख सागर हैं,
पारिजात हूँ कौं जीति लेत जोर कर के।
सदा सुख सो हैं 'सेनापति' बल वीर धीर,
राखत विजय बाजी मध्य जो समर के॥
रूप है अनूप सुर मुनि कौं वसीकरन,
जाकौं बैन सुने चैन होत नर वर के।
नंदन नरिंद दसरथ जू कौ रामचन्द,
ताकें गुन मानौं वसुदेव के कुँअर के॥

(२७)

घर के रहत जाके 'सेनापति' पैयैं सुख,
जातैं होत प्रान समाधान भली भाँति है।
जाकी सुभ गति देखे मानियै परम रति,
नैक बिन घोलैं सुधि बुधि अकुलाति है॥
देखत ही देखत बिलानी आगे आँखिन के,
कर गहि राखी सो न क्यों हूँ ठहराति है।
रस दै के राखी सरबस जानि बार बार,
नारी गई छूटि जैसे नारी छूटि जाति है॥

(२८)

तेरे नीकी बसुधा है वाके तौ न बसुधा है,
तू तो छत्रपति सो न छत्रपति मानिये।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहस गुनी,
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानिये॥
'सेनापति' सदा बड़ी साहिबी अचल तेरी,
निसि-दिन चंद चल जगत बखानिये।
महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है,
तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनिये॥

(२९)

मिलत ही जाकैं बढ़ि जात घर मैन चैन,
तन कौं तपन डारियत बगराइ कै।
आवत ही जाकै नीकौ चन्दन लगत प्यारौ,
छाया लोचन कौ चाहियतु सुखदाइ कै॥
जाही के जतन करि पाइ अब निज पति,
सुमिरि सरम जाके संगम कौ पाइ कै।
ग्रीषम कौ रितु बर बधू कौ समान करी,
'सेनापति' बचन की रचना बनाइ कै॥

(३०)

ैलन घटावै, महा तिमिर मिटावै सुभ,
डीठि कौं बढ़ावै चारि वेदन बतायौ है।
ग्न्यौ घनसार सम सीतल सलिल रस,
'सेनापति' पुरविले पुन्यन ही पायौ है॥
कैसे मन आवै अचरज उपजावै बीच,
फूलै सरसावै पीत बसन धरायौ है।
भव भय भंजन निरंजन के देखिवे कौं,
गंगा जू कौ मंजन सु अंजन बनायौ है॥

(३१)

अंजन सुरंग जीते, खंजन कुरंग मीन,
नैंक न कमल उपमा कौ नियरात है।
नीके, अनियारे, अति चपल ढरारे प्यारे,
ज्यौं ज्यौं मैं निहारे त्यौं त्यौं खरौ ललचात है॥
'सेनापति' सुधा से कटाछनि वरसि ज्यावैं,
जिनकौं निरखि हियौ हरषि सिरात है।
कानलौं विसाल काम भूप के रसाल, बाल,
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥

(३२)

कालिंदी की धार निरधार है अधर गन,
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज खंडि डारे हैं सिखंडि घन,
इन्द्र नील कीरति कराई नाहिं ए सहैं॥
एड़िन लगत 'सेना' हिय के हरष-कर,
देखत हरत रति-कंत के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अँधियारे तैं अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे तेरे केस हैं॥

(३३)

नंद के कुमार, मार हू तैं सुकुमार, ठाढ़े—
हुते निज द्वार प्रीति-रीति परवीन हैं।
निकसि हौं आई देखि रही सकुचाई, 'सेना—
पति' जदुराई मोहिं देखि हँसि दीन हैं॥
तब तें है छीन छबि देखिवैं कौं दीन सब,
सुधि बुधि हीन हम निपट अधीन हैं।
बिरह मलीन चैन पावत अली न, मन
मेरो हरि लीन तातें सदा हरि लीन हैं॥

(३४)

हित सौं निरखि हँसे तोतैं तुम उर बसे,
स्वाति हेत चातक से हम तरसत हैं।
प्रीतम हौ ही के, हौ अधार सेनापति जी के,
तुम बिन फीके मन कैसे हुलसत हैं॥
तेरे नेह नाते, तेरे लागत परोसी प्यारे,
तेरी गली गये सुख सबै सरसत हैं।
तेरे मनोरथ चाउ तेरेई दरस पथ,
तेरियै सपथ प्रान तोहि मैं बसत हैं॥

(३५)

चित चुभी आनि, मुसुकानि मन-भावन की,
मानि कुल-कानि रैनि-दिन भरियत है।
भूलि गयौ गेह, 'सेनापति' अति बाढ़्यौ नेह,
देह मैं न देह, मैन बस परियत है॥
लोग उपहासी, कानाकानी है करत [illegible],
जब गली याकी नैकु पावैं [illegible] है।
[illegible] संग रंग ताकी [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है॥

(३६)

लाल के वियोग तैं, गुलाब हूँ तैं लाल, सोई,
अरुन बसन ओढ़ि जोग अभिलाख्यौ है।
सैन सुख तज्यौ, सज्यौ रैन-दिनि जागरन,
भूलि हू न काहू और रूप-रस चाख्यौ है॥
प्यारी के नयन असुवान बरषत, तासौं,
भीजत उरोज देखि भाऊ मन भाख्यौ है।
'सेनापति' मानौं प्रानपति के दरस रस,
शिव कौं जुगल जलसाई करि राख्यौ है॥

(३७)

बिंब है अधरबिंब, कुन्द के कुसुम दंत,
उरज अनार निरखत सुखकारी है।
राजैं भुज-लता कोटि कंटक कटाछ अति,
लाल लाल कर किसलै के अनुकारी है॥
'सेनापति' चरन वरन नव पल्लव के,
जंघन कौं जुग रंभा थंभ दुति-धारी है।
मन तौ मुनिन हू कौं, जो बन बिहारी हुतौ,
सो तौ मृग-नैनी तेरे जोवन बिहारी है॥

(३८)

सुनि कै पुरान राखै पूरन कै दोऊ कान,
विमल निदान मति ज्ञान कौं धरति है।
सदा अपमान सन्मान सब 'सेनापति',
मानत समान, अभिमान तैं विरति है॥
सेई है परन साला सह्यो घाम, घन, पाला,
पंचागिनि ज्वाला, जोग, संजम सुरति है।
लीनी सौंक माला, परे अंगुरिन जप-छाला,
ओढ़ी मृग-छाला पै न बाला विसरति है॥

(३९)

आये परभात ,सकुचात, अलसात गात,
जाउक तिलक लाल भाल पर लेखियै।
'सेनापति' मानिनी के रहे रति मानि नीके,
ताही तैं अधर रेख अंजन की रेखियै॥
सुखरस भीने, प्रान प्यारी बस कीने पिय,
चिन्ह ए नबीने परतच्छ अच्छ पेखियै।
होत कहा नींदे, एतौ रैनि के उनींदे अति,
भारसीलै नैना आरसी लै क्यों न देखियै॥

(४०)

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बैंदी मृग-मद की असित है।
अंग अंग भूपन बनाइ ब्रजभूषन जू,
बीरी निज करिकै खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रस बस जब दीबे कौं महाउर के,
'सेनापति' स्याम गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ, नाथ के लगाइ रही आखिन सौं,
कही प्रानपति यह अति अनुचित है॥

(४१)

लोल हैं कलोल पारावार के अपार तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति हैं।
'सेनापति' नीकी पटबास हू तैं ब्रज-रज,
पारिजात हू तैं बनलता सरसति हैं॥
अंग सुकुमारी, संग सोरह-सहस रानी,
तऊ छिन एक पै न राधा बिसरति हैं।
कंचन अटा पर जराऊ परजंक, तऊ,
कुञ्जन की सेजैं वे करेजे खरकति हैं॥

(४२)

सखी सुख दैन स्याम सुन्दर कमलनैन,
मिस कै सुनाये बैन देखि गुरुजन मैं।
'सेनापति' प्रीतम की सुनत सुधा की खानी,
उठि धाई बाम, धाम काम छाड़ि छन मैं॥
छबि की सी छटा स्याम-घन की सी घटा आई,
झाँकी चढ़ि अटा, पगी जोबन मदन मैं।
वे जु सीस बसन सुधारिबे कौं मिस करि,
कीनौं पाइलागनौ सो लागि रह्यौ मन मैं॥

(४३)

षोड़स बरस की है खानि सब रसकी है,
जो सुख बरस की है करता सुधारी है।
ऊजरी कनक, मनि गूजरी झनक ऐसी,
गूजरी बनक बनी लाल तन सारी है॥
सौंह मो तिहारी 'सेनापति' है बिहारी मैं तो,
गति मति हारी जन रंचक निहारी है।
नंद के कुमार बारी, प्यारी सुकुमार बारी,
भेष मारवारी मानौं नारी मार वारी है॥

(४४)

जौ तैं प्रान प्यारे, परदेस कौ पधारैं तौ तैं,
बिरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमलनैनी,
'सेनापति' अनमनी बैठियै रहति है॥
कागहिं उड़ावै कौहू, कौहु करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति कौहू,
प्रीतम को चित्र में सरूप निरखति है॥

(४५)

कौनैं बिरमाए, कित छाये, अजहूँ न आये,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन-छबि देखौं नंदलाल की॥
'सेनापति' जीवन अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मों बिहाल की।
इतनी कहति आँसू बहत फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाईं ब्रज बाल की॥

(४६)

बागौ निसि-बासर सुधारत हौ 'सेनापति',
करि निसि बास रसु धारत सुरत हौ।
दै कै सरबस भरमावत हौ उनैं मेरौ,
मन सरबस भरमावत रहत हौ॥
सादर सुहास पन ताही कौं करत लाल,
सादर, सुहास, पन ताही कौं करत हौ।
मानौं अनुराग, महा उर कौं धरत भाल,
मानौं अनुराग महाउर कौ धरत हौ॥

(४७)

बरन बरन तरु फूले उपबन बन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल हैं,
गुञ्जत मधुपगान गुन गहियत है॥
आवै आस-पास पुहपन की सुबास सोई,
सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौं समाज, 'सेनापति' सुख-साज, आज,
आवत बसंत रितुराज कहियतु है॥

(४८)

लसत कुटज, घन चंपक, पलास, बन,
फूलीं सब साखा, जे हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल फूल-जाल हैं बिसाल तहाँ,
आछे अलि अछर जे काजर के मित्त हैं॥
'सेनापति' माधव महीना भर नेमकरि,
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं।
कागद रंगीन मैं प्रबीन हैं बसंत लिखे,
मानौं काम चक्कवै के बिक्रम कबित्त हैं॥

(४६)

लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग,
स्याम रंग मेटि मानौं मसि मैं मिलाये हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपवन-वन धाये हैं॥
'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाऊ कबिता के मन आये हैं।
आधे अन सुलगि, सुलगि रहे आधे मानौं,
बिरही दहन काम कैला परचाये हैं॥

(५०)

वृष कौं तरनि तेज सहसौं किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी,
छाँह कौं पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
'सेनापति' नैंकु दुपहरी के ढरत होत,
घमका बिषम ज्यौं न पात खरकत है।
मेरो जान पौनौं सीरी ठौरि कौं पकरि कौनौ,
घरी एक बैठि कहूँ घामैं बितवत है॥

(५१)

'सेनापति' ऊँचे दिनकर की चलति लुवैं,
नद नदी कुवैं कोपि डारत सुखाइ कैं।
चलत पवन मुरझात उपबन बन,
लाग्यौ है तवन डार्‌यौ भूतलौ तचाइ कै॥
भीषम तपत रितु ग्रीष्म सकुचि तातैं,
सीरक छिपी है तहखानन मैं जाइ कै।
मानौं सीत काल, सीत लता के जमाइबे कौं,
राखे हैं बिरंचि बाज धरा मैं धराइ कै॥

(५२)

वृष चढ़ि महा भूत-पति ज्यौं तपत अति,
सुखवत सिंधु सब सरवर सोत है।
धनुष कौं पाइ खग तीर सौं चलत, मानौ,
ह्वै रही रजनि दिन पावत न पोत है॥
'सेनापति' उकति, जुगति, सुभ-गति, मति,
रीझत सुनत कवि-कोविद कौं गोत है।
यातैं जानी जात जिय जेठ मैं सहस-कर,
दिनकर पूस मैं सहस पाइ होत है॥

(५३)

छूटत फुहारे सोई बरसा सरस रितु,
और सुखदाई है सरद छिरकाइ की।
हेमंत सिसिर हू तैं सीरे खसखाने, जहाँ,
छिन रहैं तपति भरति जब काइ की॥
फूले तरवर फूलवारी फूल सौं भरत,
'सेनापति' सोभा सो बसंत के सुभाइ की।
ग्रीषम के समै साँझ, राज महलन माँझ,
पेयति है सोभा षट-रितु समुदाइ की॥

(५४)

दामिनी दमक, सुरचाप की चमक, स्याम,
घटा की झमक अति घोर घनघोर तैं।
कोकिला, कलापी, कल कूजत हैं जित तित,
सीकर ते सीतल समीर की झकोर तैं॥
'सेनापति' आवन कह्यौ है मनभावन सु,
लाग्यौ तरसावन बिरह जुर ओर तैं।
आयौ सखी सावन, मदन सरसावन,
लग्यौ है बरसावन सलिल चहूँ ओर तैं॥

(५५)

दूरि जदुराई, 'सेनापति' सुखदाई देखौ,
आई रितु पाउस, न पाई प्रेम-पतियाँ।
धीर जलधर की, सुनत धुनि धर की है,
दर की सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की, हिए मैं आनि खर की 'तू,
मेरी प्रान प्यारी,' यह पीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ॥

(५६)

'सेनापति' उनए नए जलद सावन के,
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ के
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति,
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै॥
घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रवि गयौ खोइ कैं।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कैं॥

(५७)

अब आयौ भादौं, मेह बरसै सघन कादौं,
'सेनापति' जादौ-पति बिना क्यों बिहात है।
रवि गयौ दबि, छबि अंजन तिमिर भयौ,
भेद निसि-दिन कौं न क्यौंहू जान्यौ जात है॥
होति चकचौंधि जोति चपला के चमके तैं,
सूझि न परत पीछे मानौं अधरात है।
काजर तैं कारौ, अँधियारौ भारो गगन मैं,
घुमरि घुमरि घनघोर घहरात है॥

(५८)

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
'सेनापति' मानों सृङ्ग फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के॥

(५९)

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, 'सेना—
पति' है सुहात सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं॥
उदित बिमल चन्द, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयो, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन हैं॥

(६०)

सीत कौं प्रबल 'सेनापति' कोपि चढ्यो दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरसैं विषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मैं जाइकै॥
धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाइ रहैं नैंक सुलगाइ कै।
मानौ भीत जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यो पाउक छिपाइ कै॥

(६१)

आयौ जोर जड़कालौ, परत प्रबल पालौ,
लोगन कौं लालौ पर्यो, जियैं कित जाइ कै।
ताप्यौ चाहैं बारि कर, तिन न सकत टारि,
मानौं हैं पराए, ऐसे भए ठिठराइ कै॥
चित्र कैसे लिख्यौ, तेज हीन दिनकर भयौ,
अति सियराइ गयौ, घाम पतराइ कै।
'सेनापति' मेरे जान सीत के सताए सूर,
राखे हैं सकोरि कर अंबर छपाइ कै॥

(६२)

तब न सिधारी साथ, मीड़ति है अब हाथ,
'सेनापति' जदुनाथ बिना दुख ए सहैं।
चले मन-रंजन के, अंजन की भूली सुधि,
मंजन की कहा, उनही के गूँदे केस हैं॥
बिछुरे गुपाल लागै फागुन कराल, तातैं,
भई है बिहाल, अति मैले तन भेस हैं।
फूल्यौ है रसाल सो तौ भयो उर साल, सखी,
डार न गुलाल, प्यारे लाल परदेश हैं॥

(६३)

कंज के समान सिद्ध-मानस मधुप निधि,
परम निधान सुरसरि मकरंद के।
सब सुख साज, सुर राजन के सिरताज,
भाजन हैं मंगल मुकति रुप कंद के॥
सरजू-बिहारी, रिषिनारी ताप-हारी ज्ञान—
दाता हितकारी 'सेनापति' मति मंद के।
विश्व के भरन सनकादि के सरन, दोऊ,
राजत चरन-महाराज रामचंद के॥

(६४)

गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं,
संख्या सत कोटि जाकी कहत प्रवीने हैं।
नारद तैं सुनी बालमीकि, बालमीकि हू तैं,
सुनी भगतन, जे भगति रस भीने हैं॥
एती राम कथा, ताहि कैसे कैं बखानै नर,
जातैं ए विमल-बुद्धि बानी के बिहीने हैं।
'सेनापति' यातैं कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं॥

(६५)

पाँचौ सुरतरु कौं जौ एकै सुरतरु एक,
देह जौ बसंत रति-कंत की बनाइयै।
बीतें, होनहार चंद पून्यौ के सकल जोरि,
चंद करि एकै जौ दृगन दिखराइयै॥
दसौ लोक पालन कौं एकै लोकपाल एक,
बारह दिनेस कौं दिनेस ठहराइयै।
'सेनापति' महाराज राम कौ अनूप तब,
राज-तेज रूप नैंक बरनि बताइयै॥

(६६)

कोप्यौ रघुनायक कौं पाइक प्रबल कपि,
रावन की हेम-राजधानी कौं दहत है।
कोटिक लपेटैं उठी अंबर दपेटै लेति,
ताप्यौ तपनीय पयपूर ज्यौं वहत है॥
लंका बरि जरि एते मान है तपत भई,
'सेनापति' कछू ताहि बरनि कहत है।
सीत माँझ उत्तर तैं, भानु भाजि दच्छिन मैं,
अजौं ताही आँच ही के आसरे रहत है॥

(६७)

रावन कौं बीर, 'सेनापति' रघुबीर जू की,
आयौ है सरन, छाँड़ि ताही मद अंध कौं।
मिलत ही ताकौ राम कोप कै करी है ओप,
नामन कौं दुज्जन, दलन-दीन-बंध कौं॥
देखौ दान बीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीनै दोऊ दान, को बखानै सत्य संध कौं।
लंका दसकंधर की दीनी है बिभीषन कौं,
संकाऊ बिभीषन की दीनी दसकंध कौं॥

(६८)

बीर रस मद माते रन तै न होत हाँते,
दुहू के निदान अभिमान चाप बान कौं।
सर बरषत, गुन कौं न करषत मानौं,
हिय हरषत, जुद्ध करत बखान कौं॥
'सेनापति' सिंह-सारदूल से लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातुधान कौं।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरंधर है,
उत दसकंधर है सागर गुमान कौं॥

(६९)

काढ़त निषंग तैं न साधत सरासन मैं,
खैंचत, चलावत न बान पेखियत है।
स्रवन मैं हाथ कुंडलाकृति धनुष बीच,
सुन्दर बदन इक चक्र लेखियत है॥
'सेनापति' कोप ओप ऐन हैं अरुन नैन,
संबर-दलन बैन तैं बिसेखियत है।
रह्यौ नत ह्वै कै अंग ऊपर कौं संगर मैं,
चित्र कैसौ लिख्यौ राजाराम देखियत है॥

(७०)

सोहत विमान, आसमान मध्य भासमान,
संकर बिरंचि पुरहूत देव दानौ है।
करत विचार कहत न समाचार डर—
पत सब चार दस मुख आगे मानौ है॥
'सेनापति' सारदा की देखौ चतुराई बान,
कही पै दुराई मन बैरी तैं सकानौ है।
अमर बखानैं राम रावन के समर कौं,
गिरि-भुवि-अंबर मैं रावन समानौ है॥

(७१)

कीनी परिकरमा छलत बलि बामन की,
पीछे जामदगनि कौं दरसन पायौ है।
पाइक भयौ है लंक नाइक दलन हूँ कौं,
ह्वै कै जामवंती भलौ कान्ह कौं मनायौ है॥
ऐसे मिलि औरो अवतारन कौं जामवंत,
अंत सियकंत ही कौं सेवक कहायौ है।
'सेनापति' जानी यातैं, सब अवतारन मैं,
एक राजाराम गुन ग्राम करि गायौ है॥

(७२)

होति निरदोष, रवि जोति सी जगमगति,
तहाँ कविताई कछू हेतु न धरति है।
ऐसौई सुभाउ हरि कथा कौं सहज जातैं,
दूषन बिना ही भूषन सौं सुधरति है॥
कीने हैं कवित्त कछू राम की कथा के तामैं,
दीजियै न दूषन, कहत, 'सेनापति' है।
आप ही विचारो तुम, जहाँ खर दूषन हैं,
सो अखर दूषन सहित कहियत है॥

(७३)

देव दया-सिंधु, 'सेनापति' दीन बन्धु सुनौ,
आपने बिरद तुम्हैं कैसे बिसरत हैं।
तुमही हमारे धन, तो सौं बाँध्यौ प्रेम पन,
और सौं न मानै मन तोही सुमिरत हैं॥
तो ही सौं बसाई और सूझै न सहाइ हम
यातैं अकुलाइ पाइ तेरेई परत हैं।
मानौ कै न मानौ करौ सोई जोइ जिय जानौं,
हम तौ पुकार एक तोही सौं करत हैं॥

(७४)

लछि ललना है, सारदाऊ रसना है जाकी,
ईस महामाया हू कौं निगमन गायौ है।
लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत जाकौं,
नंदन विधाता, हर नाती जाहि भायौ है॥
चारि दिगपाल हैं बिसाल भुजदंड जाके,
सेस सुख-सेज, तेज तीनि लोक छायौ है।
महिमा अनन्त सिय-कंत राम भगवंत,
'सेनापति' संत भागिवंत काहू पायौ है॥

(७५)

नीकी मति लेह रमनी की मति लेह मति,
'सेनापति' चेत कछू पाहन अचेत है।
करम करम करि करमन कर पाप,
करम न कर मूढ़ सीस भयौ सेत है॥
आवै बनि जतन ज्यौं रहै बनि जतनन,
पुत्र के बनिज तन मन किन देत है।
आवत बिराम, वैस बीती अभिराम तातैं—
करि बिसराम भजि रामैं किन लेत है॥

(७६)

गंगा तीरथ के तीर थके से रहौ जू गिरि,
कै रहौ जू गिरि चित्रकूट कुटी छाइ कै।
जातैं दारा नसी, बास तातैं बारानसी किधौं,
लुञ्ज है कै वृन्दावन कुञ्ज बैठ जाइ कै॥
भयौ सेतु अंध! तू हिय कौं हेतु बंध जाइ,
धाइ सेतु बंध के धर्नी सौं चित लाइ कै।
बसौ कंदरा मैं भजौ खाइ कंद-रामैं, 'सेना-
पति' मंद! रामैं मति सोचौ अकुलाइ कै॥

(७७)

कोई परलोक-सोक भीत अति बीतराग,
तीरथ के तीर बसि पी रहत नीर ही।
कोई तपकाल बाल ही तैं तजि गेह-नेह,
आगि करि आस पास जारत सरीर ही॥
कोउ छाँड़ि भोग, जोग धारना सौं मन जीति,
प्रीति सुख-दुख हू मैं साधत समीर ही।
मोहै सुख 'सेनापति' सीतापति के प्रताप,
जाकी सब लागै पीर ताही रघुबीर ही॥

(७८)

केतौ करौ कोई पैये करम लिख्योई तातैं.
दूसरी न होई उर सोई ठहराइयै।
आधी तैं सरस गई बीति कै बरस अब,
दुज्जन-दरस बीच न रस बढ़ाइयै॥
चिंता अनुचित तजि धीरज उचित, 'सेना-
पति' है सुचित राजाराम जस गाइयै।
चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइयै॥

(७९)

पारथ की रानी सभा बीच बिलखानी दुसा—
सन अभिमानी दौरि गही केस पास मैं।
तब हीं बिचारी, सारी खैंचत पुकारी 'कान्ह!
कहाँ हौ! परी हौं नीच लोगन के त्रास मैं॥
'सेनापति' त्यौं ही पट कोटिक उपटि चले,
चारयौ बेद उठे जस गाइ कै अकास मैं।
बैरिन के बास मैं बिपत्ति के निवास मैं ज—
गन्निवास वा समैं दिखाई प्रीति बास मैं॥

(८०)

पति के अछत, सुरपति जिन पति कीनौं,
जाके नख-सिख रोम रोम भरयौ पाप है।
देह दुति गई, तई, बन मैं पखान भई,
लाग्यौ बिकराल रिसिराज कौं सराप है॥
सोई है अहिल्या, सिव, सिवा के समान भई,
पतिब्रत पाइ, पायौ सती कौं प्रताप है।
'सेनापति' बेद मैं बखानैं तीन लोक जानैं,
सो तौ महाराजा रामचंद्र कौं प्रताप है॥

(८१)

यह कलि काल बढ़्यौ दुरित कराल, देखि,
आई दुचिताई, सुचिताई सब लूट हीं ।
हम जप हीन, जाइ तरैं कत दीन, तो सी,
दूसरी नदी न, देखि फिरे चहुँ खूँट हीं ॥
'सेनापति' सिव-सिर-संगिनी, तरंगिनी तू,
तोहि अचवत पचवत कालकूट हीं ।
तजि कै अपाइ, तीर बसै सुख पाइ, गंगा !
कीजै सो उपाइ, तेरे पाइ ज्यौं न छूट हीं ॥

(८२)

बिस्व की जुगति, जीतै जोग की जुगति हू कौं,
भुकति-मुकति देत लागति न पल है ।
जाकौं पौन लागैं, दल दुरित के भागैं, जाके,
आगे न चलत जमराज हू कौ बल है ॥
'सेनापति' प्रीति-रीति कीजै परतीति करि,
गंगा जप-तप नेम धरम कौ फल है ।
रूप न बरन, उतपति न मरन जाके,
कर न चरन ताके चरन कौ जल है ॥

(८३)

रहौ पर लोक ही के सोक में मगन आप,
साँची कहौं हिन्दू कि मुसलमान भाइ रे ।
मेरी सिख लीजै जामैं कछुअ न छीजै,
मन मानै तब कीजै तासौं बहुत उपाइ रे ॥
चारि बर दैनी, हरिपुर की नसैनी गंगा,
'सेनापति' याकौं सेइ सोकहिं मिटाइ रे ।
न्हाइ कै बिसुन-पदी जाइ तू बिसुन पद,
आलसौ न्हाइ जाइ नदी पास आइ रे ॥

(८४)

राम जू की आन कोई तीरथ न आन देख्यौ,
गंगा की समान हो तौ वेद तौ बतावतौ।
सम सरिता की, जौ व होती सरिता की, तौपै,
याही कौं कन्हैया क्यौं विभूति मैं गनावतौ॥
सगर-कुमारन कौं 'सेनापति' तारन कौं,
तीरथ जौ कोऊ सुरसरि सम पावतौ।
गंगा ही के अरथ भगीरत-बिरथ है, तौ,
काहे कौं बिरथ तप करि तन तावतौ॥

(८५)

जाकी नीर-धार, निरधार निरधारहूँ कौं,
परम अधार आदि-अंत और अब हूँ।
सुख कौं निधान, 'सेनापति' सन्निधान जो है,
मुकति निदान भगवान मानी भव हूँ॥
ऐसी गंगा रानी वेदबानी मैं बखानी, जग,
जानी सनमानी, दीप सात खण्ड नव हूँ।
कामधेनु हीन, सुरतरु वारि दीन जाकौं,
देखैं वारि दारिदी न होत दीन कबहूँ॥

टिप्पणी

(१) इस छन्द में कवि ने ब्रह्म स्वरूप श्री रामचन्द्र जी की स्तुति की है।

[बहिरंतर=बाहर और भीतर, स्थूल जगत और भाव जगत दोनों में। पुरान-इतिहास-वेद-बंदी जन=पुराण, इतिहास और वेद ही वन्दी-जन हैं। 'नाइक अनेक ब्रह्मांड' पद मे ब्रह्मत्व की सूचना दी गई है।]

२। [रस-रोसौ=राग-द्वेष। पसु=अज्ञानी, मूर्ख। नओ सौ=नया सा। सिलाहू=अहिल्या भी। बोध सार=ज्ञान। धरो सौ=रक्खा हुआ सा। खरो सौ=निश्चित सा।]

अर्थ—कविवर सेनापति श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की स्तुति करते हुये कहते हैं कि जिस कवित्व शक्ति को बड़े बड़े कवियों ने अनेक जल-स्थलों में तपस्या करके, सब प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करके और सांसारिक राग-द्वेष को परित्याग करके (वीत राग होकर) प्राप्त किया है उसी कवित्व शक्ति को, यह सेनापति, जो अज्ञानी है और जिसे वर्ण-ज्ञान अभी नया हुआ है, चाहता है। उसी कवित्व के यश का इच्छुक है। (क्योंकि) जिन चरणों का स्पर्श करके गौतम ऋषि की धर्मपत्नी सचेत हो गईं और उन्हें शारदा का भी ज्ञान सरलता से इस प्रकार हो गया मानों कहीं रक्खा हुआ मिल गया हो। हमारे मन में ऐसा निश्चय-सा हो रहा है कि रामचन्द्र जी के उन्हीं कमलवत् चरणों का मुझे पूर्ण भरोसा है, अन्य किसी का नहीं। (उन्हीं की कृपा से हमें कवित्व-यश भी प्राप्त हो जायेगा)।

विशेष—"पाइ कै ... भरो सौ है"—जो अहिल्या पाप वासना के कारण निर्बुद्धि होकर पत्थर (जड़) हो गई, उन्हीं अहिल्या को श्री रामचन्द्र जी के चरणों की कृपा से इतना ज्ञान हो गया जितना ज्ञान सरस्वती को है।

(३) [गंगाधर=शंकर । अनूप=अनूपशहर ।] इस छन्द में कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है।

(४) [तीछन=तीक्ष्ण । छन्द-कोष-सावधान=छन्द कोष आदि का ज्ञाता । द्वै अरथ = दो अर्थ वाली, श्लेष अलंकार युक्त ।]

इस छन्द में कवि ने अपनी कविता की विशेषता का वर्णन किया है।

(५) [दोष=काव्य दोष, श्रुति-कटुत्व आदि । गुन=काव्य-गुण (ओज, प्रसाद, माधुर्य) । अरबीन=यह अर्वाचीन के अर्थ का द्योतक प्रतीत होता है, नये ढंग से किया है । धुनि=ध्वनि, काव्य-ध्वनि । भूषन अलंकार । करै प्रसिद्ध=कविता क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्ति करै । चरचत= चर्चा करता हूँ ।]

इस छन्द में कवि, गर्व परिहार करता हुआ अपनी कविता की प्रंशसा भी बड़े ही चमत्कार पूर्ण ढंग से करता है।

(६) [दोपै = दोष को, रात्रि को । पिंगल = छन्द, पीलारंग । बुध कवि = बुद्धिमान कवि, बुध और शुक्र । उरकंठ = कंठ में (कंठस्थ), समीप । जोए = देखने पर । पद = छन्दों के चरण । पदमन = कमलों । तजै को कनरसै = कौन .कनरसिया काव्य-सगीत रसिक) उसे छोड़ सकता है ! अर्थात् सभी रसिक उसे पढ़ते हैं । कोक = चकवा चकवी रसै न तजै = जिसका रसानन्द कोक नहीं छोड़ते । छन्द = कवित्त, सूर्य-मण्डल । अच्छर···सम = अक्षर सुन्दर और स्पष्ट हैं और कविता ईख के रस के समान मधुर है, आकाश (अक्षर = शून्य = आकाश) स्वच्छ है और (सूर्य की छवि) उषा को अपने समान करती है। जड़ताऊ = अज्ञानता, निद्रावस्था । उदवतसविता = उदयकालीन सूर्य।

इस छन्द में उदयकालीन, सूर्य की शोभा और सेनापति की कविता के गुणों की प्रशसा श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षालंकार द्वारा की गई है।

(७ [बानी = चमक, सरस्वती । सुबरन = स्वर्ण, सुन्दर अक्षर । मुँह रहै = मुहर हैं, मुँह में रहते हैं । अरथ = अर्थ (धन),

शब्दार्थ। अलंकार = आभूषण, काव्यालंकार। मति = नहीं, बुद्धि। चारि चरन = चार कौड़ी (थोड़ा धन), छन्द के चार चरण। ब्याज = सूद, बहाना। वित्त = धन। थाती = धरोहर। राजि = पंक्ति।]

इस छन्द में धन की धरोहर (वित्त की थाती) और 'कवित्तन की राजि' का श्लेष युक्त रुपक है। कवि अपने आश्रय दाता को धरोहर के रूप में अपने छन्दों को सौंप रहा है।

(८) ('राजा रामचन्द्र' और 'उदित पूर्णचन्द्र' की श्लेप युक्त समता का वर्णन है।)

[सीतै संग = सीता के साथ, शीतलता के साथ। सुधाई = सरलता, अमृत ही। खर तेजै = खरनामक राक्षस का तेज, तीक्ष्ण ताप। कला की निकाई = सौन्दर्य का निखार, सोलह कलाओं की शोभा। करन = बाहु, किरण। निसा कलंकै = (निसाक लंकै) निःशंक होकर लंका को, रात्रि के कलंक (अंधकार) को। सेवक हैं तारे = जिन्होंने भक्तों का उद्धार किया है, जिसके सेवक नक्षत्र हैं।]

(९) (इस छन्द में 'नव बाला' और 'फूल-माला' की समता का श्लेष युक्त वर्णन है।)

[रति = कामदेव की स्त्री, प्रीति। भ्रम रहे = भ्रम होता है, भ्रमर। हौस = अभिलाषा। उरबसी का मिसाल है = उर्वशी की समता की है। उरबसी = उर्वशी अप्सरा, एक प्रकार का हार। नव जोबनी = नवयौवना, जो नवीन बनी है। रसाल = प्रेयसी, रसपूर्ण। पूरे गुन को निवास = सभी गुणों से युक्त, पूर्ण रूप से जिसका डोरे (धागे) में निवास है। कलिकाल है = कलिकाल (कलियुग) में है, कलिका लहै (कलिका मिलता है)। नव बाल = नवयौवना बाला।]

'ज्यौं न कहि जाइ' पद में सहृदयों को मार्मिकता भरी है।

(१०) (इस छन्द में नायिका का उपालम्भ अन्यत्र अनुरक्त नायक के प्रति और स्वर्णकार का उपालम्भ अपने मालिक के प्रति, श्लेष द्वारा दिखाया गया है)

[धन=स्त्री, रत्न । तन=शरीर, ओर । जात रूप=स्वर्णकांति, स्वर्ण । देति न······जे=जे (जो) ती (स्त्री) अधरदान नहीं करती, जो (अध रती) आधी रत्ती भी नहीं देता । ढरत=आकर्षित, झुकना । बाट=मार्ग, बटखरा । तारे=पुतली, एक प्रकार के आभूषण । बाट······तौल्यौं=आँख गड़ा कर आपका मार्ग देखा (कि कब आते हैं), अनेक प्रकार से इस आभूषण को बटखरे रख कर तौला । दीनौ······आप=आपको प्राण पण से अपने को सौंप दिया, आपके लिये कुछ ज़िन्दा अधिक) तौला । पीछे ····धरत हौं=अनेक निकृष्ट व्यक्तियों को पीछे डाल कर मैंने दूने उत्साह से अपने मन को आप के अधीन सौंपा, परन्तु हे नाथ! तुम तो अपना पैर भी हमारी ओर नहीं रखते, पीछे के पलरे पर और भी बटखरे रखकर उत्साह से मैंने अधिक तौलकर आपको आभूषण दिया, परन्तु फिर भी आप कहते हैं कि हमें अभी और (पावना) मिलना है । अधमन=निकृष्ट, तौल के छोटे बटखरे । पाउन=पैर नहीं, पावना मिलना ।]

(११) (इस छन्द में संयोगिनी और वियोगिनी नायिका का श्लेष युक्त वर्णन है)

[हुतासन=अग्नि । बाल=नायिका, बाला । बालमही=(बालम ही), पति ही । परी=पड़ी हुई । भूखन=आभूषण, भूख नहीं । सून सेज=प्रसून (पुष्प) की शैय्या, सूनी सेज । रत काम केलिकौं करति है=पड़ी हुई काम क्रीड़ा करती हैं, पड़ी पड़ी अभिलाषा में ही (कल्पना में ही) क्रीड़ा करती है । गेह अंगन सुधारै=गृह और आँगन सँवारती (सजाती) है, गृह और अपने अंग भी नहीं सँभारती । घरी है बरस=एक वर्ष भी (सुख में) एक घड़ी के समान है, एक घड़ी भी (वियोग में) एक वर्ष के समान है । तन मैं न सरसति है=शरीर में काम (मैन, मदन) देव के प्रभाव से सरसता है, (वियोग के कारण) शरीर में रस नहीं है (सूख गया है) । सरि=समता ।

(१२) इस छन्द में बाला (नायिका) की नव ग्रह की माला के साथ श्लेष द्वारा समता की गई है।

[अरुन=लाल, सूर्य। अधर=ओष्ठ, आकाश। सकल=सब, कलाओं के साथ। मंगल=कल्याण कारी, मंगल ग्रह। जुव जन= युवा पुरुष, सदा युवा रहने वाले (देवता)। जीवक है=दास है, (जीव कहैं) बृहस्पति कहते हैं। कवि=विद्वान, शुक्र। अति मंद गति=जिसकी चाल बहुत मंद है, शनिश्चर (इस ग्रह की चाल बहुत मंद है)। रसाल=रसपूर्ण, रसा (पृथ्वी) से सम्बद्ध (सभी ग्रह पृथ्वी से सम्बन्ध रखते हैं।) तम=श्याम, राहु। चिकुर=केश। केतु……निधि=कामदेव के विजय भण्डार की पताका, कामनाओं की विजय का भण्डार (कामनाओं को नष्ट करने वाला) केतु ग्रह। अंबर=वस्त्र, आकाश। रासिन=ढेर, राशि (१२ राशियाँ)।

(१३) इस छन्द में 'महाभारत की सेना' और 'नायिका' की समता श्लेष द्वारा की गई है।

[केसौ=केशव, केश भी। अरजुन=अर्जुन, अरजु न (सो नहीं अरती)। पति=मर्यादा, स्वामी। गिरि=[illegible], ब्रजा। बाजी= अश्व, बाजीगर (ब्रजा रूपी बाजीगर)। मनी=मणि (श्रेष्ठ)। करन= कर्ण, कान। वीर=योद्धा, कान का आभूषण। दुरजोधन=धृतराष्ट्र पुत्र, दुर (कान की बाली) जो धन (भी)। संतनु=शान्तनु, (भीष्म के पिता), संत लोग। तनै=पुत्र, शरीर भी। सुरथो= सुन सुधर्मा, ध्यान भी। सदा नकुल=सर्वदा नकुल, सदानुकूल। भीम सेन=भीम (द्वितीय पार्थ), बड़ी सेना। आदि…परति सो= आदि, महाभारत की लड़ाई होती है, जिसके पढ़ने मात्र से सारी व्यथा दूर हो जाती है। अनी=सेना।

(१४) इस छन्द में 'मित्र' और '[illegible]' के रूप का वर्णन श्लेष द्वारा किया गया है।

[सदा नंदी=सदा नंदी बैल, सदा आनन्द में लीन। आसा कर=हाथ में आसा (त्रिशूल), जिनके हाथ में आसा है (जो आशा की पूर्ति करते हैं)। घनसार=कपूर, घन (बादल) का तत्व अर्थात् नीलापन। सैन सुख=योगाभ्यास का सुख, शयन का सुख। सुधा-दति=चन्द्र, धवल। सेखर है=ललाट है, शेषनाग रहते हैं। गौरी कीरति=पार्वती का प्रेम, जिनकी कीर्ति उज्वल है। भूतन=भूतप्रेतगण, जीवों। अंतर=बीच में, हृदय में। रमै धरै उर=रमण करता है (हृदय में ध्यान करता है), हृदय में लक्ष्मी को धारण करता है। भोगी-भेष=सर्प से वेशभूषा बनाये, विलासी का सा जीवन। धरत नगन=नग्न रहते हैं, पर्वत धारण करते हैं (कृष्णावतार में)। जानि=ज्ञानी। बिन कहैं=बिना बताये। जानि=जान लेते हैं। बहुधा उमाधव कौं=प्रायः शंकर (उमा=पार्वती+धव=पति) (बहुधाऊ माधव), (मा=लक्ष्मी+धव=पति) और विष्णु का भेद मन से हटाकर]

(१५) इस छन्द में कवि ने 'दाता' और 'सूम' का श्लेष पूर्ण वर्णन किया है।

[नाही·····कहैं='नाहीं' नहीं करता, थोड़ा माँगने पर भी सब देने के लिये कहता है, 'नहीं' देंगे, नहीं देंगे कहता है, थोड़ा माँगने से भी शब्द तक नहीं बोलता। पट=वस्त्र, दरवाजा। घटी=घड़ी, घाटा। सब जन मन भाए=सब लोगों के मन को अच्छे लगते हैं, किसी जन्म में अच्छे नहीं जनम न भाए) लगते। भोगी=विलासी, सर्प। बिलसत=विलास करते हैं, (बिल+सत) सैकड़ों बिलों (बाँबियों) में। कन कन जोरैं=(कनक+न जोरैं), स्वर्ण तक नहीं रखते (दान दे देते हैं) एक एक कण संग्रह करते हैं। दान पाठ=दान देने में। परिवार हैं=परिवार का परिवार दानी है, (परिवा+रहैं) दान देने के लिये प्रतिपदा (अनध्याय) मनाते हैं। इकसार=समान]

(१६) इस छन्द में दाता और सूम का श्लेष युक्त वर्णन है।

[होत=रहते हुये। रूखे मन मौन है रहत=मन में रूखे नहीं रहते, रूखे मन से चुप रह जाते हैं। रिसिभरि हैं=रिसिभरि न रहत (क्रोध नहीं करते, रिसिभरि हैं (क्रोध करते हैं)। आपने···लेत=अपना वस्त्र तक देकर वे कीर्ति प्राप्त करते हैं, जहाँ तक अपना बस चलता है नहीं देते, जोड़ने में ही लगे रहते हैं। वितरत···धरिहैं=हृदय में (हित) धारण करके पृथ्वी में धन बांटते जाते हैं, धन के इकट्ठा करने ही में लगे रहते हैं और पृथ्वी में धन गाड़ कर चले जाते हैं। चिन्ता मति करौ=मन में चिन्ता न कीजिये, मन में सोचो (कि हमसे धन मिलेगा कि नहीं)। असान करि है=आसान कर दूंगा, ऐसा न करूंगा।]

(१७) इस छन्द में 'गोसाईं' और 'भिखारी' की श्लेष द्वारा समता की गई है।

[तिलकन झलकावैं=मस्तक पर तिलक लगाते हैं, तिल के कणों को दिखाते हैं (कि हमारे पास केवल यही है)। भुज मूलन छपावैं=भुजाओं के ऊपर (मोढ़ों पर) छापा लगवाते हैं, भुजाओं का मूल तक नहीं छिपाते अर्थात् सब के सामने फटी दशा में चले जाते हैं। द्वारका हू=द्वारिका तीर्थ में भी, काहू (किसी) के द्वार पर भी। वैसनव भेष=वैष्णव का भेष, वैस (वयस)+नव (नूतन) अर्थात् नई अवस्था। भागन···खाहिं=जो भक्त लोग देते हैं उसी से जीविका चलाते हैं, भक्तों का भांति कमाई खाते हैं। सेवैं···निदान हीं=अन्त समय में भी, मनो हृदय से भगवान की सेवा नहीं करते। सिंगार=वेश भूषा। नागे=नङ्गे। विसन=बिना बाल के (मूँड़ लेना), प्रसन्न होना। मोड़ि···हीं=मुण्डन करके चेला मूँड़ लेते हैं, मोड़ते करके प्रसन्न कर लेते हैं। मन ध्यान ही=मन ही में ध्यान रहता है।]

(१८) इस छन्द में रांगा की धार और पुरुष की तलवार की समता की गई है।

[घाट=स्नान करने का तट, तलवार की धार। बानी=स्वभाव। पानी=जल, चमक। रज=बालू, रजपूती (क्षात्रधर्म)। बहति है=प्रवाहित होती है, रणाङ्गण में चलती है। असील=असली सच्ची।]

(१६) इस छन्द में ग्रीष्म और शिशिर ऋतु को एक समान बताया गया है।

[बिन सीरक न सोयौ जात=बिना शीतलता के नहीं सोया जाता, बिना (सीर कन) शीतल कणों के ही नींद लगती है। रंगित=रंगे हुये। सुबास=सुन्दर वस्त्र, निवास स्थान। रुचिर साल=रसाल (रस) में रुचि है, सुन्दर दुशाले रखते हैं। सूरज···ताई है=सूर्य की तप्त किरणें शरीर को जलाती हैं, सूर्य की गरम किरणें शरीर को गर्म रखती हैं। सीतल···सुहात=अधिक शीतल होने के कारण चन्दन अच्छा लगता है, शीतलता अधिक है इसलिये चंद्र अच्छा नहीं लगता। आँगन···बराई है=आँगन ही में कल पड़ती है (सुख मिलता है) किसी प्रकार अग्नि के ताप से शरीर को बचाते हैं। आँगन में अग्नि जला कर किसी प्रकार शरीर को सुख पहुँचाते हैं।]

(२०) इस छन्द में वर्षा और शिशिर ऋतु की समता श्लेष द्वारा की गई है।

[दारुन=दुःख, कठोर। मकर=मछली, माघमास। नदीन=नदियाँ दीनों को नहीं। करक=कड़कड़ाहट (गर्जन), रुक रुककर पीड़ा का होना। सीरक=सीड़न सील, ठंढक। अवनी रहै=अब नीर है (पानी पानी है) पृथ्वी भर में। पाँउरीन=खड़ाऊँ, दालान।]

(२१) इस छन्द में कवि ने विषम ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु को एक समान बताया है।

जलै है=जल रहा है, जल ही जल है। तिन······हर्यौ है=तृण तरुवर सभी के रूप को हर लिया है (जला दिया है); तृण तरुवर सभी हरे भरे हैं। झर=ताप, झड़ी। भादव=दावाग्नि की भा (दीप्ति),

भादों मास। जलद=तेज, बादल। तन=शरीर, तनिक। सेक=सेंकना (जलाना), सिंचन। तरनि=सूर्य, नौका। (गर्मी में नदियों में सूर्य की गरमी से बचकर सुख पाते हैं और वर्षा में नौकाओं द्वारा नदियों को पार करके सुख पाते हैं। मीरो घन छाँह=ठंडी घनी छाया, बादलों की शीतल छाया।]

(२२) इस छन्द में वृद्धावस्था, और 'कलिकाल' का श्लेषयुक्त वर्णन है।

[द्विजन=दाँतों, ब्राह्मणों। बरन=प्रकार (अवस्था), जाति। अंग, शरीर के अंग, शास्त्र के अंग (अथवा सत्य, दान, तप, दया)। लीन=विलीन (नष्ट), तत्पर। स्रुति=कान, वेद। लार=थूक। मुख लागी········है=मुख से लार टपकती है, अथवा वे मुख लगी रहती हैं। नाक=नाक से बहा हुआ द्रव पदार्थ, स्वर्ग। जवन=जो, जब न, यवन। देखिये······माँझ=जो घनी शोभा दिखलाई पड़ती थी अब युग में (इस बुढ़ाई में) लीन हो गई, गलियों में बहुत से यवन दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण केसौ=काले बाल, श्री कृष्ण और विष्णु। आशा=डंडा (छड़ी), तृष्णा (लोभ)।]

(२३) गंगा की धारा और राम कथा एक समान है।

[कुस-लव=राम के पुत्र। रस करि=प्रेमपूर्वक। सुर धुनि=गंगा, देवताओं ने ध्वनि से गाया। (ऋषि बाल्मीकि के आदेश से लव और कुश दोनों ने राम कथा कंठस्थ कर ली थी और बड़े अच्छे स्वर में गाते थे)। भौ उतारन=पृथ्वी पर उतारने के लिए, संसार का उद्धार करने के लिये। बरन=रंग, अक्षर। बानी=स्वभाव, वाणी। भुवपति···हरि=जिसकी पुण्य के समान लहरि संसार का पालन करने के लिये शरीर पर धारण किया है, पुण्यशील श्री विष्णु जिस कथा में राजा के रूप में शरीर धारण करके अवतरित हैं। सियरानी=शीतल, सीतारानी।]

(२४) इस छन्द में श्लिष्ट शब्दों द्वारा कृष्ण और राम का समान रूप से वर्णन किया गया है।

[बानरन=रण में हठ, बन्दरों। लंकै=कमर को, लंका को। और लछन=वीरों के से लक्षण, भाई लक्ष्मण। अंगद=भुजबंद (आभूषण), बालिपुत्र। बाहु=भुजा, सहायक। दूषन=दोषों को, दूषण नाम का राक्षस। हरि=श्री कृष्ण, बन्दर। सियरानी=शीतल, सीतारानी।]

(२५) इस छन्द में कवि ने श्री कृष्ण को गोपिकाओं द्वारा 'मोहन' और 'निर्मोही' दोनों कहलवाया है।

[अधिक अयानी मैं न जानी=मैं अधिक मूर्ख हूँ अतः जान न सकी अथवा मैं अधिक अज्ञान नहीं हूँ, सब समझती हूँ। जेंवत... पराये हौ=अपने काम से मतलब रखते हो, काम निकल जाने पर सम्बन्ध नहीं रखते। औधि=अवधि, सीमा। आरत=दुखी, विरहिणी। करतन मोहौ=शरीर भी मोहित कर लेते हो, करत न मोहौ (नहीं मोह करते) मनमोहन=मन को लुभाने वाले, मनमोह न (निर्मोही)।]

(२६) इस छन्द में रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के गुणों को समान रूप में दिखाया गया है।

[कामैं=इच्छाओं को। सत्यभामा=सत्य भामा (स्त्री) (स्त्री की सच्ची अभिलाषाओं को, सत्यभामा नामकी रानी को। पारिजात=नन्दन कानन का एक वृक्ष जो अभिलषित फल देनेवाला है। रामचन्द्र जी दानशीलता में पारिजातसे भी बढ़ कर हैं। श्रीकृष्ण पारिजात को, जीत कर सत्यभामा के लिये लाये थे। बल बीर धीर=बल वीरता और धैर्य, धैर्यशाली बलराम जिनके भाई हैं। सुरमनी=देवताओं में श्रेष्ठ (इन्द्र) सु रमनी (सुन्दर स्त्री)। बैन=वचन, वंशी।]

(२७) इस छन्द में नारी (स्त्री) और नाड़ी का श्लेष युक्त वर्णन है।

[समाधान = शांति । सुभ गति = सदाचरण, अच्छी गति । रति = प्रेम, आनन्द । रस = प्रेम भाव, रासायनिक औषधि ।]

(२८) इस छन्द में यमक अलंकार द्वारा 'रामचन्द्र' और 'चन्द्रमा' की समता करके प्रतीप अलंकार का समावेश कर रामचन्द्र को श्रेष्ठ ठहराया है।

[वसुधा = पृथ्वी । नव सुधा = नवीन सुधा । छत्रपति = छत्र धारण करने वाला । नछत्र पति = नक्षत्रों का स्वामी । सूर = वीर । सूर = सूर्य । चल = चंचल ।]

(२९) इस छन्द में ग्रीष्म ऋतु और नव विवाहिता-वधू का समान रूप से वर्णन किया गया है।

[बढ़ि जात घर मैन चैन = घर में सुख नहीं होता, घर में (मैन) मदन का आनन्द बढ़ जाता है। नीकौ चन्द न लगत = चन्दन अच्छा लगता है, चन्द्रमा भी अच्छा नहीं लगता (प्रियतमा का मुख चंद्र से भी बढ़कर है) । प्यारी छाया ····· सुखदाई कै = नेत्र प्यारी, सुख देने वाली छाया को ही देखना चाहते हैं, प्यारी के नेत्र की छाया ही सुखदाई है। जाही के ······ पति = जिसकी तप्त किरणों को पाकर (अवनि) पृथ्वी जलतीहै, जिसके सुकोमल अरुण करपल्लवको अत्र नित्य पति प्राप्त करता है। सुखित सरस = जितने सरस (जलाशय) हैं सब शुष्क हो रहे हैं, सुन्दर रसपूर्ण (संगम पाकर सुख मिलता है।]

(३०) इस छन्द में गंगा-स्नान और अंजन की समानता दिखाई गई है।

[मैलन = पाप, मैलापन । तिमिर = अज्ञानता, धुँधलापन । डीठि = दिव्य दृष्टि, आँख की ज्योति । चारि वेदन = चारों वेदों ने, वैद्यों ने । घनसार = कपूर । सम = समान, मात्रा (तौल) । फूलै सरसावै = पुष्पों से सुशोभित होती है, आँख की फूली को भी काटता है। पीत बसन धरायौ

है=मानो पीत वस्त्र धारण किये है, पीतल के पात्र में रक्खा जाता है। निरंजन=ब्रह्म।]

(३१) इस छन्द में नायिका के नेत्र का वर्णन है।

[अनियारे=विचित्र। दरारे=आकृष्ट होने वाले। ज्यावैं=जीवित कर देते हैं। सिरात है=शीतल हो जाता है।]

(३२) इस छन्द में कवि ने नायिका के केश का वर्णन किया है।

[निरधार=निराश्रय। अधर=अंतरिक्ष, आकाश। अलि=भ्रमर। अहिराज=कालिय नाग। सिखंडि = मोर। घन=काले बादल। रति-कंत=कामदेव।]

(३३) कोई सखी श्याम सुन्दर के रूप सौन्दर्य को देख कर रीझती है और अपने मन की तल्लीनता का वर्णन करती है।

[मार=कामदेव। परबीन=प्रवीण, चतुर। हँसि दीन है=इसी-लिये तो उनकी ओर मन खिंच गया। अली=हे सखी। हरि लीन=हर लिया। हरि लीन=श्री कृष्ण में अनुरक्त हैं।]

(३४) इस छन्द में मन की तन्मयता का अच्छा चित्र अंकित किया गया है।

[हो=हृदय। परोसी=पड़ोसी, पास में रहने वाले। चाउ=अभिलाषा।]

(३५) वियोगिनी नायिका नायक के वियोग में दुःखी है परन्तु कुल-मर्यादा के कारण उसे स्पष्ट नहीं करती।

[भरियत है=व्यतीत करती है। मैन बस=कामदेव के बस में। काना बाती=काना फूसी, गुप्त चर्चा। घाती=घातक।]

(३६) वियोगिनी नायिका नायक की विरह-ज्वाला में जल रही है, मानों योग साधना कर रही हो। नेत्रों से अजस्र आँसुओं की धारा बह रही है।

[शिव······है=प्रियतम के दर्शन के हेतु मानों शंकर जी की

(४०) नायक स्वयं अपने हाथ से नायिका का शृङ्गार कर रहा है। शृंगार करने में इतना तन्मय हो गया है कि अपने ही हाथ से नायिका के पैर में महावर भी देने लगा। उस समय नायिका ने मर्यादा का ध्यान करके उसे वर्जित कर दिया।

[वेनी चोटी, केशपाश। मृगमद = कस्तूरी। असित = काली।]

(४१) श्याम श्रीकृष्ण चन्द्र जी द्वारिका के राजमहलों में विराजमान हैं, परन्तु रह-रहकर व्रजमण्डल की सुधि उन्हें सताती है।

[पारावार = समुद्र। पटवास = सुगन्धित पदार्थ जिससे वस्त्र सुवासित होता है। अंटा = अट्टालिका, प्रासाद। परजंक = पर्यंक। खरकनि हैं = खटकती हैं, रह रह कर याद आती हैं।

(४२) इस छन्द की अंतिम पंक्ति में मार्मिक चित्र अंकित किया गया है।

[वे जु······मन मैं = झाँकते समय सिरपर से वस्त्र हट गया। वस्त्र को सम्हालने के बहाने हाथ सिर पर रख कर प्रणाम किया। उस समय की वह छवि आँखों में और मन में बसी है।]

(४३) ऊजरी कनक = स्वर्ण की भाँति गौर वर्ण। गूजरी = पैर में पहिनने का आभूषण। गूजरी बनक = गुजरात देश की स्त्री की वेशभूषा के समान। नन्द के कुमार वारी = कृष्णवाली अर्थात् कृष्ण की प्यारी; ग्वाला। वारी = बाला। मारवारी = मारवाड़ वाली। मार वारी = कामदेव की स्त्री, रति।

(४४) प्रोषितपतिका बैठी हुई अपने प्रियतम का ध्यान कर रही है।

[जौतैं = जब से। तौतैं = तब से। सगुनौती = सगुन विचारना।]

(४६) खण्डिता नायिका प्रियतम की दशा देखकर कहती है।

इस छन्द में कवि ने सभंग यमक का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है।

[बागौ = वस्त्र। बागौ······सुरतहौ = हे प्रियतम! रात्रि भर उसके (प्रेयसी के) यहाँ निवास करके सुरत का रसास्वादन करते हो

युगल मूर्ति को जलशायी बना दिया है, जिससे प्रसन्न होकर शिव जी प्रियतम का दर्शन करा दें।]

(३७) इस छन्द में कवि ने मृगनैनी के यौवन को सुन्दर उपवन के समान बताया है।

[अधर-बिम्ब = लाल ओष्ठ। बिम्ब = बिम्बाफल। कटाछ = कटाक्ष। बरन = वर्ण, रंग। रंभा = कदली। जो बन-बिहारी हुतो = जो बन में विहार करता था। जोबन-बिहारो = यौवन में विहार करता है। (बड़े बड़े मुनियों का मन भी उस यौवन को देखकर विमोहित हो जाता है)।

(३८) यद्यपि सब प्रकार की साधनायें और तपस्यायें की परन्तु स्त्री-रूप-सौन्दर्य से मन विरत नहीं होता।

[विरति = वैराग्य। परन-साला = पर्ण शाला, कुटी। घाम-घन-पाला = ग्रीष्म, वर्षा, सर्दी। संजम = इन्द्रिय-निग्रह। सुरति = ध्यान। सौक = सौकी, एक सौ।]

(३६) कवि ने यमक द्वारा खंडिता नायिका का वर्णन किया है। नायक रात्रि भर कहीं दूसरी जगह जगा है। प्रातः काल उनींदी अवस्था में जब घर आया उस समय की स्वकीया की उक्ति है।

[जावक = महावर, लाल रंग जो पैर में लगाया जाता है। जावक ......लेखियै = मानिनी नायिका को मनाने के लिये उसके चरणों को अपने मस्तक से लगाया। उसके पैर के जावक नायक के ललाट में लगाया जो तिलक की भाँति लगता है। रति मानि नीके = अच्छी प्रकार से रति मान करके। अधर......रेखियै = रति में नायिका के नेत्र के अंजन की रेखा नायक के ओष्ठ में लगी है। परतच्छ = प्रत्यक्ष। रैनिके उनींदे = रात्रिभर के जगे हुये। आरसीलै = रसपूर्ण, प्रेम से भरे हुये, अरुणाभ। आरसी लै = दर्पण ले कर। (अपने उनींदे अरुणाभ नेत्रों को जरा दर्पण लेकर देखिये)

(४०) नायक स्वयं अपने हाथ से नायिका का शृंगार कर रहा है। शृंगार करने में इतना तन्मय हो गया है कि अपने ही हाथ से नायिका के पैर में महावर भी देने लगा। उस समय नायिका ने मर्यादा का ध्यान करके उसे वर्जित कर दिया।

[बेनी चोटी, केशपाश। मृगमद=कस्तूरी। असित=काली।]

(४१) श्याम श्रीकृष्ण चन्द्र जी द्वारिका के राजमहलों में विराजमान हैं, परन्तु रह-रहकर व्रजमण्डल की सुधि उन्हें सताती है।

[पारावार=समुद्र। पटवास=सुगन्धित पदार्थ जिससे वस्त्र सुवासित होता है। अटा=अट्टालिका, प्रासाद। परजंक=पर्यंक। खरकनि हैं=खटकती हैं, रह रह कर याद आती हैं।

(४२) इस छन्द की अंतिम पंक्ति में मार्मिक चित्र अंकित किया गया है।

[वे जु······मन मैं=झाँकते समय सिरपर से वस्त्र हट गया। वस्त्र को सम्हालने के बहाने हाथ सिर पर रख कर प्रणाम किया। उस समय की वह छवि आँखों में और मन में बसी है।]

(४३) ऊजरी कनक=स्वर्ण की भाँति गौर वर्ण। गूजरी=पैर में पहिनने का आभूषण। गूजरी बनक=गुजरात देश की स्त्रों की वेशभूषा के समान। नन्द के कुमार वारी=कृष्णवाली अर्थात् कृष्ण की प्यारी; ग्वाला। वारी=वाला। मारवारी=मारवाड़ वाली। मार वारी=कामदेव की स्त्री, रति।

(४४) प्रोषितपतिका बैठी हुई अपने प्रियतम का ध्यान कर रही है।

[जौतैं=जब से। तौतैं=तब से। सगुनौती=सगुन विचारना।]

(४६) खण्डिता नायिका प्रियतम की दशा देखकर कहती है।

इस छन्द में कवि ने सभंग यमक का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है।

[बागौ=वस्त्र। बागौ······सुरतहो=हे प्रियतम! रात्रि भर उसके (प्रेयसी के) यहाँ निवास करके सुरत का रसास्वादन करते हो

और दिन रात सदा अपने वस्त्र ही सँवारते रहते हो। भरमावत=प्रसन्न करते हो। भरमावत=भ्रम में डालते हो। सादर······करत हो=आदर पूर्वक प्रसन्नता से (ता ही को) उसी के हृदय की सी करते हो। और (हमारे सामने भी) उसी के हास्य का समादर करते हो। मानौ अनुराग=प्रेम करते हो। महाउर कौं धरत भाल=उसके चरण के महावर को अपने ललाट पर लगाते हो, उसे मनाते हो। मानौं अनुराग···धरत हौ=ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके हृदय के अनुराग (प्रेम) को अपने सिरमाथे लिये हो। अन्तिम पंक्ति में उत्प्रेक्षालंकार है।

(४७) वसंत ऋतुराज कहा जाता है, राजा महाराजा के आगमन पर उसके स्वागत की तैयारी होती है। चारों ओर प्रकृति की छटा मानों उसका स्वागत कर रही है।

[चतुरग संग दल=वही मानो चतुरंगिणी सेना साथ में है। मधुप=भ्रमर। सुवास=सुगन्धि। सौंधे=इत्र।]

(४८) वसंत ऋतु में सभी पल्लव-पुष्प विकसित हैं। भौरे गुञ्जार कर रहे हैं। कोकिल का आलाप सुनाई पड़ता है। मानो कामदेव रूपी चक्रवर्त्ती राजा की कीर्ति गाई जाती है।

[आधे अलि अच्छर=काले काले भौंरे ही मानो अक्षर हैं। जे कारज के मित्त हैं=जो कार्य के लिये ही हैं (किसी काम से ही लिखा गया है)। माधव=वसंत (चैत्र)। द्विज=पक्षी। कागद ····· कवित्त हैं=रंगविरंगे पुष्पों पर काले काले भौंरे बैठे हैं मानो वसंत ने कामदेव रूपी चक्रवर्त्ती राजा के यशोगान के कवित्त लिख रक्खे हैं।]

(४६) पालास के वृक्ष लाल लाल फूलों से भरे हैं। उनपर काले काले भौंरे बैठे हैं। ऐसा लगता है मानों अध सुलगा कोयला है।

[केसू=टेसू, पलास। माधव=वैशाख। काम=कामदेव]

(५०) इस छन्द में कवि ने ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक चित्र बहुत ही सुन्दर अंकित किया है।